२२५
साहित्य

श्री कृपाल सिंह रावत द्वारा ५६
पुस्तक "विनय पत्रिका" (आलोचनात्मक
अध्ययन) श्री जुबली नागरी भण्डार
पुस्तकालय को भेंट की गई

कृपाल सिंह रावत
एम. ए. उत्तरार्द्ध (हिन्दी)
डूंगर महाविद्यालय,
बीकानेर
१२।८।६९

दो शब्द

लोकप्रिय महाकाव्य 'श्रीरामचरितमानस' के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास की प्रतिभा और कला का अध्ययन एवं विवेचन अनेक अधिकारी विद्वानों ने किया है। उन सबके आलोचना-ग्रन्थों से लाभ उठाकर, एम० ए० और साहित्यरत्न के छात्रों के हितार्थ प्रस्तुत पुस्तक में 'विनयपत्रिका' की विस्तृत समीक्षा प्रस्तुत की गई है। इस पुस्तक को सभी दृष्टियों से उपयोगी बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है, इसलिए विषय का विभाजन अध्यायों में न करके प्रश्नोत्तर में किया गया है। भाषा-शैली को भी यथासम्भव सरल एवं बोधगम्य बनाने की चेष्टा की गई है। आशा है, छात्रगण इस कृति से लाभान्वित होंगे।

अन्त में, मैं आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय, आचार्य रामबहोरी शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० माताप्रसाद गुप्त, डा० बलदेवप्रसाद मिश्र, डा० रामरतन भटनागर, तथा श्री सुरेशकुमार चतुर्वेदी आदि विद्वानों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिनकी कृतियों के अध्ययन से मैंने इस पुस्तक को लिखने में लाभ उठाया है।

—रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

नवीन संस्करण

इस संस्करण में प्रस्तुत कृति का आदि से अन्त तक संशोधन करके नए प्रश्न जोड़े गए हैं। आशा है, परिवर्द्धित रूप में यह संस्करण छात्रों के लिए अधिक हितकर सिद्ध होगा।

—रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

प्रश्न-सूची

प्रश्न

१—'विनयपत्रिका' में प्राप्त सामग्री के आधार पर तुलसी के जीवन पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

२—भक्तिकाल की राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का सिंहावलोकन करते हुए 'विनयपत्रिका' की रचना के मूल में निहित युग-प्रेरणा का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

३—उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर 'विनयपत्रिका' की रचना-तिथि निर्धारित कीजिए।

४—"विनयपत्रिका में तुलसी-युग की विभिन्न परिस्थितियों का पर्याप्त चित्रण मिलता है।" उपयुक्त उद्धरण देकर इस कथन की सार्थकता पर विचार कीजिए।

५—'विनयपत्रिका' के प्रमुख वर्ण्य-विषय क्या हैं ? संक्षेप में प्रत्येक पर विचार कीजिए।

६—संक्षेप में 'विनयपत्रिका' की विनय-पद्धति पर सोदाहरण विचार कीजिए।

७—उपयुक्त उद्धरण देते हुए 'विनयपत्रिका' के अन्तर्गत तुलसी के दार्शनिक दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।

८—भक्तिकालीन जन-जीवन की प्रमुख समस्या क्या थी ? तत्कालीन दार्शनिक पद्धतियों में निहित उस समस्या के विभिन्न समाधानों पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए 'विनयपत्रिका' में तुलसी द्वारा प्रस्तुत किए गए उसके समाधान पर विचार कीजिए।

९—'विनयपत्रिका' में तुलसी ने राम को किस रूप में चित्रित किया है ? सोदाहरण विवेचन कीजिए।

प्रश्न

२२—"विनयपत्रिका तुलसी के वाग्-चातुर्य एवं उक्ति-वैचित्र्य का अद्भुत नमूना है।" इस कथन का विस्तार से विवेचन कीजिए।

२३—'विनयपत्रिका' में गोस्वामी जी ने अपनी हीनता और आतुरता का राग सर्वत्र अलापा है। क्या इस ग्रन्थ को आत्म-चरित-प्रधान कहा जा सकता है? यदि नहीं, तो इस रहस्य का उद्घाटन कीजिए।

२४—'विनयपत्रिका' से उपयुक्त उद्धरण देकर सिद्ध कीजिए कि तुलसी का साधु-मत वास्तव में लोक-हित का प्रतिपादक है।

२५—वे कौन-सी विशेषताएँ हैं, जिनके कारण 'विनयपत्रिका' तुलसी की एक उत्कृष्ट कृति मानी जाती है?

२६—'विनयपत्रिका' का मुख्य उद्देश्य क्या है, और इस कार्य में कवि को कहाँ तक सफलता मिली है?

२७—'विनयपत्रिका' में तुलसी की जो भक्ति-भावना व्यक्त हुई है, उसकी 'भ्रमरगीत' के रचयिता सूर की भक्ति-भावना से संक्षेप में तुलना कीजिए।

२८—'विनयपत्रिका में तुलसी की विचारधारा'—शीर्षक पर एक निबन्ध लिखिए।

२९—काव्य-कला की दृष्टि से संक्षेप में 'विनयपत्रिका' की आलोचना कीजिए।

३०—'विनयपत्रिका' में तुलसी की समन्वयात्मक प्रतिभा का जो रूप उपलब्ध है, उसे आवश्यकतानुसार उद्धरण देते हुए स्पष्ट कीजिए।

३१—हिन्दी-साहित्य में 'विनयपत्रिका' के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास का स्थान निर्धारित कीजिए।

३२—भक्ति की परम्परा पर विचार करते हुए, उसमें 'विनयपत्रिका' का स्थान निर्धारित कीजिए।

विनयपत्रिका

प्रश्न १—'विनयपत्रिका' में प्राप्त सामग्री के आधार पर तुलसीदास के जीवन पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर—भक्तिकाल का भक्त-कवि अपने काव्य की रचना 'स्वान्तःसुखाय' करता था। लौकिक सुख-भोग की अपेक्षा पारलौकिक सुख की ओर उसका अधिक ध्यान रहता था। 'यश' और 'अर्थ' का अर्जन वह अपनी कविता से नहीं करता था। उसकी आत्मा काव्य में अभिव्यक्त होकर, उसे अलौकिक आनन्द में लीन कर देती थी। अतः वह अपने व्यक्तित्व को भूल कर भगवान् के साथ 'तदाकार' हो उठता था। ऐसी स्थिति में उसका परिचय वही होता था, जो उसके भगवान् का परिचय है। जब भक्त और भगवान् अलग-अलग नहीं, तब भक्त का अलग से परिचय क्या? भले ही भक्तिकाल का कवि पार्थिव माता-पिता के बिना अस्तित्व को प्राप्त न कर सका हो; फिर भी वह तो 'राम' नाम के दो अक्षरों को ही अपना माता-पिता मानता था—"मेरे तो माय-बाप दोउ आखर हौं सिसु-अरनि अरो।"—(वि० प० : २२६)। अपने वैयक्तिक जीवन के प्रति अपने काव्य में ऐसी उपेक्षा भक्तिकाल के पूर्व या पश्चात् के किसी कवि में दृष्टिगोचर नहीं होती। भक्तिकाल के कवि के वैयक्तिक जीवन-विषयों की उनके काव्य में प्रायः उपेक्षा मिलती है। यत्र-तत्र जो स्फुट उदाहरण मिलते भी हैं, वे भी भगवान् के निकट अपने हृदय की किसी विशेष भावना की अभिव्यक्ति के लिए ही हैं। अतः भक्ति-काल के किसी भी कवि का परिचय उसकी कृतियों से समग्रतापूर्वक प्राप्त नहीं किया जा सकता। 'समग्रता' से तात्पर्य यह है कि प्रायः कोई भी भक्ति-कालीन कवि अपने जीवन पर प्रकाश डालने नहीं बैठा। फलस्वरूप जो सामग्री उनकी रचनाओं में उपलब्ध होती है, उसी को लेकर उनके विषय में कुछ जाना जा सकता है। तुलसीदास जी के

विषय मे तो यह तथ्य और भी अधिक सत्य सिद्ध होता है। उनकी रचनाओं मे हमें उनके जीवन को जानने के लिए प्रत्यक्षतः कोई सामग्री नही मिलती। जहाँ-तहाँ भक्ति के आवेश मे कही गई उक्तियो को सकलित करके ही हम उनके आधार पर कवि के विषय में कुछ कह सकते हैं। विनयपत्रिका में यह सामग्री इतनी कम तथा अप्रत्यक्ष हो गई है कि सहज में उसका सकलन भी नही किया जा सकता। पाठकों को उसे समझने के लिए एक विशेष दृष्टि की आवश्यकता पड़ती है।

सामान्यत. हम विनयपत्रिका मे तुलसी के जीवन पर प्रकाश डालने वाली सामग्री का निम्नांकित शीर्षकों मे विभाजन कर सकते हैं—

(१) जन्म और शैशव का परिचय देने वाली सामग्री।
(२) पारिवारिक जीवन सम्बन्धी सामग्री।
(३) गृह-त्याग और पर्यटन सम्बन्धी सामग्री।
(४) जीवन के कटु अनुभवों का परिचय देने वाली सामग्री।
(५) स्वभाव एवं आचरण पर प्रकाश डालने वाली सामग्री।
(६) जीवन के ध्येय को व्यक्त करने वाली सामग्री।
(७) अन्तिम जीवन को प्रकाश मे लाने वाली सामग्री।

उपर्युक्त शीर्षकों के अन्तर्गत विनयपत्रिका के आधार पर तुलसी के जीवन को निम्नाकित रूप मे समझा जा सकता है—

(१) जन्म और शैशव—तुलसी की विनयपत्रिका के किसी भी पद से यह पता नही चलता कि वे कहाँ, कब तथा किसके घर पैदा हुए थे। शायद उन्होंने अप्रत्यक्षतः भी ऐसी कोई बात कहने की आवश्यकता नही समझी, जिससे वे 'राम' के अतिरिक्त किसी 'अन्य' के प्रतीत हों। जब राम ही उनके 'सर्वस्व' थे, तब वे और किसको 'अपना' बतलाते? केवल अपने परिवार की ओर उन्होंने कुछ सकेत निम्नाकित पंक्तियों में किया है—

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर
हेतु जो फल चारि को।
—(वि० प०, पद १३५)

इन पंक्तियों में प्रयुक्त 'सुकुल' शब्द को लेकर किसी ने उन्हे 'शुक्ल' माना है, किसी ने सनाढ्य ब्राह्मण बतलाया है और उसके आधार पर यह सिद्ध किया कि इनका जन्म 'शुक्ल ब्राह्मण परिवार' मे हुआ था। वस्तुतः धर्म, अर्थ,

काम, मोक्ष—चारों फलों को प्रदान कराने वाले 'सु+कुल' अर्थात् सुन्दर परिवार में इनका जन्म हुआ था। इतना ही इसका तात्पर्य हो सकता है, और उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे, क्योंकि ब्राह्मण का ही एक ऐसा सुन्दर 'कुल' है जो धर्म-पूर्वक जीविकार्थ वित्त प्राप्त करके मोक्ष-हेतु 'कामना' करता है।

उसके पश्चात् तुलसी के शैशव का परिचय देने वाली जो सामग्री उपलब्ध होती है, उसमे उनके नाम का संकेत देने वाली निम्नांकित पंक्ति का विशेष महत्त्व है—

राम को गुलाम, नाम रामबोला, राख्यौ राम

इस पंक्ति के आधार पर कुछ आलोचकों ने इनका बचपन का नाम 'रामबोला' माना है। परन्तु 'राख्यौ राम' वाक्यांश की ओर विशेष ध्यान देने पर एक अन्य संकेत भी मिलता है। वह यह कि 'नाम रामबोला' तुलसी का बचपन का नाम तभी माना जा सकता है, जबकि हम 'राख्यौ राम' को अलग से इस अर्थ में व्याख्या करें कि "राम ने मुझे रखा—मेरी रक्षा की।" अर्थात् बचपन में मेरा नाम 'रामबोला' था और 'राम ने मेरी रक्षा की'। तब सहज मे यह आशय निकल आता है कि "बचपन मे ही तुलसी राम का नाम बोलने लगे थे, अतः उनका नाम 'रामबोला' पड़ा एवं किसी कारणवश वे अनाथ हो गए तब राम ने ही उनकी रक्षा की।" तुलसी ने विनयपत्रिका में एक अन्य पद में लिखा भी है—

जननि जनक तज्यो जनमि,
करम बिनुहूँ बिधिहूँ सृज्यो अबडेरे।

विद्वानों ने 'तज्यो' शब्द का यह अर्थ लगाया है कि माता-पिता ने तुलसी को जन्म लेते ही त्याग दिया था। इसका कारण वे यह बतलाते हैं कि तुलसी अभुक्त मूल नक्षत्र मे पैदा हुए थे, इसलिए माता-पिता ने उनको कुल के लिए अशुभ और अमंगलकारी माना था। परन्तु 'तज्यो' शब्द का एक अन्य आशय यह भी लिया जा सकता है कि वे तुलसी को 'छोड़ गए' अर्थात् स्वर्गवासी हो गए। माता-पिता अभुक्त मूल नक्षत्र में पैदा होने पर भी बालक को निर्मम बनकर घर से बाहर नहीं छोड़ सकते। उनका पुत्र से अपनी मृत्यु की दशा में ही त्याग सम्भव हो सकता है। "तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिता हू"—पंक्ति से भी यही ध्वनि निकलती है। अतः विनयपत्रिका से तुलसी के

प्रारम्भिक जीवन के विषय में यह ज्ञात होता है कि इनका जन्म एक उच्च ब्राह्मण कुल में हुआ था। माता-पिता इनके जन्म के कुछ समय पश्चात् स्वर्ग सिधार गए थे। अनाथ होकर 'राम' नाम की शरण ले लेने के कारण इनका नाम 'रामबोला' पड़ गया, क्योंकि विधिपूर्वक इनका नामकरण संस्कार भी (माता-पिता के अभाव में) सम्भव न हो सका। राम ही उस अनाथावस्था में इनके रक्षक थे।

(२) पारिवारिक जीवन-सम्बन्धी सामग्री—इस प्रकार की सामग्री विनय-पत्रिका में प्रत्यक्षतः नहीं मिलती। केवल अप्रत्यक्ष रूप से ही भाव-खण्डों को सँजोकर उनके पारिवारिक जीवन के विषय में कुछ कहा जा सकता है। यथा, वे लिखते हैं—

लरिकाई बीती अचेत चित
चंचलता चौगुनी चाय।
जोवन जुर जुवती कुपथ्य करि
भयो त्रिदोस भरि मदन बाय॥

इससे यह आशय लिया जा सकता है कि बाल्यावस्था से यौवन तक का इनका जीवन व्यर्थ ही बीत गया। इनको युवती का सम्पर्क मिला; अर्थात् विवाह हुआ और ये वासना का शिकार बन गये। गुरु से जब इनका सम्पर्क हुआ तो मानो इन्हें राज-मार्ग मिल गया—

गुरु कह्यो राम-भजन नीको।
मोहि लागत राज डगरो सो।

इससे प्रतीत होता है कि इनका परिवार, जन्म के परिवार तक सीमित नहीं रहा। इनका सम्बन्ध गुरु एवं राम से हुआ।

(३) गृह-त्याग और पर्यटन—तुलसी ने एक अन्य स्थान पर लिखा है—

दुखित देखि संतन कह्यो,
सोचै जानि मन माहूँ।
तोसे पसु पाँवर पातकी परिहरे न,
सरन गए रघुबर ओर निबाहू।

स्पष्ट है कि घर से अनाथ हो, बाहर निकल जाने वाले तुलसी विवाह के ... भी अधिक समय तक घर नहीं रहे। उन्हें तो फिर एक बार दुखी होकर सन्तों की शरण लेनी पड़ी। कहा जाता है कि तुलसी की पत्नी ने उन्हें

फटकारा और राम-भक्ति की प्रेरणा दी, परन्तु 'विनयपत्रिका' मे ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता। उपर्युक्त पंक्तियों से यह भाव अवश्य निकलता है कि वे दुखी होकर घर से जब बाहर आए तो सन्तों ने उन्हें राम-भक्ति का सुन्दर सुखद मार्ग बता दिया। 'विनयपत्रिका' मे यह संकेत भी मिलता है कि उन्होंने चित्रकूट एव काशी का पर्यटन किया—

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।

× × ×

सेइय सहित सनेह देह भरि
कामधेनु कलि कासी।

× × ×

चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो।

(४) जीवन के कटु अनुभवों का परिचय देने वाली सामग्री—तुलसी को अपने जीवन मे सांसारिक सुख नहीं मिला। वे अनेक प्रकार के कष्टों की आग मे जलते रहे। 'विनयपत्रिका' मे इस तथ्य का समर्थन करने वाली अनेक उक्तियाँ मिलती हैं; यथा—

काल कलि-पाप-सताप-सकुल सदा,
प्रनत तुलसीदास तात-माता।

× × ×

साँसति तुलसीदास की सुनि सुजस तुही लै।

× × ×

दीन सब अंग-हीन, छीन, मलीन, अघी, अघाइ।
नाम लै भरै उदर प्रभु-दासी-दास कहाइ॥

× × ×

द्वारे तें ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।

× × ×

द्वार-द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ।

(५) स्वभाव एव आचरण पर प्रकाश डालने वाली सामग्री—तुलसी के स्वभाव की सरलता, विनम्रता एवं पवित्रता उनकी विनयोक्तियों से स्पष्ट झलकती है। वे स्वतन्त्र विचारों के व्यक्ति थे। वे लिखते हैं—

सीस कहैं पाँय सो न सोच न सँकोच मेरे।
ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं।
तुलसी अकाज काज राम ही के रीझे खीझे।
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं।

इससे स्पष्ट है कि वे किसी की कभी चिन्ता नहीं करते थे। उन्हें राम की भक्ति के सम्बन्ध में अपने ऊपर पूर्ण विश्वास था, अत: वे किसी के प्रसन्न या क्रुद्ध होने से कभी प्रभावित नहीं होते थे।

वे अपने राम का विश्वास-बल पाकर सदा अभय रहते थे—

तुलसीदास रघुबीर बाहु बल
सदा अभय काहू न डरै।

उन्होंने अपने स्वभाव का स्वयं निरीक्षण भी किया था, और लिखा था—

राग-रोष-ईर्षा-बस रची न साधु-मनोति।
कहे न सुने गुन गन रघुबर के भई न रामपद प्रीति॥

किन्तु इन पंक्तियों में आत्म-दोष-दर्शन की प्रवृत्ति को ही अधिक स्थान मिला है। वे अपने दोषों को बढ़ा-चढ़ा कर देखना चाहते हैं। उन्होंने अपने आचरण के विषय में एक स्थान पर लिखा है—

जागत ही गई बीति निसा सब
कबहूँ न नाथ ! नींद भरि सोयो॥

उन्होंने अपनी हीनता को यहाँ तक अपनी वाणी से प्रकट किया है कि—

स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजरा को सो
टोटक औचट उलटि न हेरो॥

(६) जीवन के ध्येय को व्यक्त करने वाली सामग्री—विनयपत्रिका में इस प्रकार की सामग्री पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। उससे तुलसी के जीवन का ध्येय सरलता से जाना जा सकता है। वे राम की भक्ति करके जगज्जाल से मुक्ति तो पाना चाहते ही थे; साथ ही संसार के कल्याण के लिए राम-भक्ति का प्रचार भी करना चाहते थे। वे जीव को राम की अनन्त भक्ति-भावना में तन्मय करना चाहते थे। विनयपत्रिका के अनेक पदों से उनके जीवन का, भक्ति-साधना और उसके द्वारा संसार का कल्याण करने का यह ध्येय व्यक्त हुआ है—

राम नाम को प्रभाव जानि जूड़ि आगि है।
सहित सहाय कलिकाल भोरु भागि है ॥
राम नाम सों बिराग जोग जप जागि है।
बाम विधि भाल हू न कर्म दाग दागि है ॥

× × ×

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे।
घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे ॥

वे राम-भक्ति में पूर्णत लीन रहना चाहते थे। उनकी कामना थी—

कबहुँक हौं यह रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ-कृपालु कृपा तें सन्त सुभाव गहौंगो ॥

(७) अन्तिम जीवन को प्रकाश में लाने वाली सामग्री—इस प्रकार की सामग्री भी विनयपत्रिका मे अधिक नही है। जो सकेत मिलते हैं, उनके आधार पर यही कहा जा सकता है कि तुलसी वृद्धावस्था मे भी बहुत दुखी रहे। ससार ने उनके प्रति किसी प्रकार की श्रद्धा नहीं दिखाई, अन्यथा उन्हें द्वार-द्वार भटकने को बाध्य न होना पडता। उन्होने स्पष्ट लिखा है कि उन्हें दीन तथा वित्तहीन अवस्था मे तथा बिना आश्रय की दशा मे राम की ही एक मात्र शरण सूझती थी। अतः वे बार-बार यही प्रार्थना करते थे—

कतहुँ नाहिं ठाउँ, कहँ जाहुँ कोसलनाथ।
दीन वित्तहीन हौं, विकल बिनु डेरे ॥

इसीलिए उन्हें विनयपत्रिका लिखनी पडी थी। वृद्धावस्था में लिखी ग[ई] उनकी उस विनयपत्रिका को राम ने स्वीकार किया, और इस प्रकार [वे] जगज्जाल से मुक्त हुए। किन्तु यह मुक्ति उन्हें कब मिली, इसका कोई संके[त] विनयपत्रिका मे नही मिलता। "सो प्रगट तनु जरजर जरावस" "सिर क[...] इन्द्रिय सक्ति प्रतिहत" तथा "रटत रटत रटयो, जाति-पाँति भाँति घटयो"-[...] आदि पक्तियों से यह सकेत अवश्य मिलता है कि वे वृद्धावस्था तक जीवि[त] रहे।

साराश रूप मे यही कहा जा सकता है कि विनयपत्रिका मे तुलसी [के] जीवन की एक भावात्मक झाँकी ही हमें मिलती है, ऐतिहासिक विवरण प्रस्[तुत] करने वाली पक्तियाँ उपलब्ध नही होती। विनयपत्रिका तो क्या, तुलसी [की] किसी भी अन्य कृति से उनके जीवन का पूर्ण परिचय प्राप्त कर सकना अ[...]

तक सम्भव नही हो सका। अतः शोधकों को उनके जीवन-परिचय का विवरण तैयार करने के लिए अनेक अन्य बाह्य साधनो का आधार लेना पड़ता है। विनयपत्रिका की सामग्री उस दिशा मे केवल संकेत-भर करती है।

प्रश्न २—भक्तिकाल की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का सिंहावलोकन करते हुए विनयपत्रिका की रचना के मूल में निहित युग-प्रेरणा का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—महाकवि तुलसीदास की प्रतिभा अद्वितीय थी—इस सम्बन्ध में दो मत नही हो सकते। आधुनिक काल तक हम हिन्दी-साहित्य मे उनकी टक्कर का अन्य कवि नही देखते। ऐसे महान् कवि ने, जो अपने श्रीरामचरितमानस मे 'नाना पुराण निगमागम' के ज्ञान का परिचय देता है, राम-कथा को छोड़ अन्य किसी विषय को अपनी अनुभूति का प्रधान अग क्यो नहीं बनाया, शिव-पार्वती या कृष्ण को लेकर क्रमशः पार्वती-मगल या कृष्ण-गीतावली जैसी लघु पुस्तको की रचना भी यद्यपि उसने की, तथापि इन पुस्तको के विषयों मे उसकी वृत्ति अधिक नही रमी। उसका ध्यान सर्वथा राम-चरित पर ही रहा, ऐसा न करने के लिए भी कवि को उसकी जिन अन्तर्वृत्तियों ने बाध्य किया—उनकी राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक पृष्ठभूमि क्या थी? इस पृष्ठभूमि को समझे बिना हमे तुलसी की रचनाओ के सम्बन्ध मे उठाए गए पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर नही मिल सकता। विनयपत्रिका मे उन्होने रामकथा को भी छोड दिया है और राम की महिमा के सागर मे ही डूबते-उतराते रहे हैं। उसमे बाह्य कथा की अपेक्षा तुलसी की अपनी आन्तरिक व्यथा और भावना को स्थान मिला है। अतः इस विशेषता को भी तब तक नही समझा जा सकता, जब तक कि तुलसी के युग को न समझ लिया जाय।

जिस युग मे उन्होने साहित्य सृजन किया, उसे भक्तिकाल के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ सक्षेप मे इस काल की राजनीतिक, सामाजिक एव धार्मिक परिस्थितियो को स्पष्ट करके 'विनयपत्रिका के मूल मे निहित युग-प्रेरणा का स्वरूप स्पष्ट करने की चेष्टा की जायगी।

राजनीतिक परिस्थिति

तुलसी का जन्म जिस युग मे हुआ, उस समय दिल्ली के राजसिंहासन पर मुगल-वंश का अधिकार था। अकबर कपट-नीति से समस्त देश को अपने अधिकार मे कर, उत्तर से सुदूर दक्षिण तक तथा पूर्व से पश्चिम तक मुगल-

साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था। उसने राजपूतों से अपने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके तथा आवश्यकतानुसार युद्धों की परम्परा चलाकर राजपूतों को अपने वश में करना प्रारम्भ कर दिया था। अनेक हिन्दू-राजा उसके नियन्त्रण को स्वीकार कर उसके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर चुके थे। मुगलों की साम्राज्य-विस्तार-लिप्सा ने महाराणा प्रताप जैसे वीर को वन-वन भटकने को बाध्य कर दिया था। कोई भी स्वाधीनतापूर्वक सिर उठा कर नहीं चल सकता था। जो मुगल सम्राट् का आधिपत्य स्वीकार कर चुके थे, उनका शाही दरबार में सम्मान होता था। किसी सामन्त के मर जाने पर उसके अधिकार की जागीर मुगल-कोष की वृद्धि में सहायक होती थी। इस कोष से, जो निरन्तर बढ़ता जा रहा था, राज-भवन मे निर्बाध विलास चलता था। राज-कर्मचारी साम्राज्य की विलासिता का लाभ उठाते थे और अपने क्षेत्रों में मनमानी करते थे। राज्यविस्तार के लिए जो युद्ध होते थे, उनमें अपार धन तथा जन-हानि होती थी एवं उसके दुष्परिणाम प्रजा को भोगने पड़ते थे। किसानों की खून-पसीने की कमाई का अधिकांश राजकोष में जाता था और उससे साम्राज्य की शान-शौकत की वृद्धि की जाती थी, रोज लड़े जाने वाले युद्धों का खर्च पूरा किया जाता था। जनता अपने कष्टों को सुनाने के लिए बड़ी कठिनाइयों से बादशाह तक पहुँच पाती थी, क्योंकि उस तक पहुँचने से पूर्व उसे अनेक छोटे-बड़े अधिकारियों के द्वार पार करने पड़ते थे। जहाँगीर ने न्याय करने की चेष्टा भी की, किन्तु अकबर के समय से चली आने वाली व्यवस्था की आन्तरिक बुराइयों को वह नहीं समझ पाया और न समाप्त ही कर सका।

धार्मिक परिस्थिति

भारत में आते ही मुसलमान अपने धर्म के प्रचार में लग गये थे। मुस्लिम-शासकों की नीति उसकी सहायता कर रही थी। अकबर ने धार्मिक क्षेत्र में सहिष्णुता का परिचय देते हुए उदार हिन्दुओं को अपनी ओर आकर्षित किया था और उन्हें [illegible] करके धार्मिक विद्वेष मिटाने की चेष्टा भी की थी। किन्तु उसका पुत्र [illegible] इस्लाम धर्म का प्रचार करता ही था। उसने हिन्दुओं के विरुद्ध [illegible] और उनके धर्म की [illegible] को [illegible] के लिए [illegible] आदि की स्थापना की तथा [illegible] भी छोटी-बड़ी हिन्दू [illegible] से [illegible] करता था।

हिन्दुओं की आन्तरिक स्थिति बड़ी ही शोचनीय थी। परस्पर विरोधी विभिन्न मत और सम्प्रदाय उनकी जड़ें खोखली कर रहे थे। उत्तर से दक्षिण तक तथा पूर्व से पश्चिम तक समस्त देश में विभिन्न धर्म-साधनाओं का प्रचार था और वे सब आपस में संघर्ष-रत थीं। धर्म के मूल सिद्धान्त भूलकर हिन्दू-जनता अन्धविश्वासों का शिकार हो रही थी। शैव, शाक्त, वैष्णव, नाथपंथी-हठयोगी आदि सब आपस में लड़-झगड़ रहे थे। शैवों और वैष्णवों में तो यह संघर्ष चरम सीमा तक आ पहुँचा था। मन्दिरों और मठों में भ्रष्टाचार पनप रहा था। स्त्रियों के साथ पापाचार करने में पुजारियों और महन्तों को स्वर्ग का सुख दृष्टिगोचर होता था। धर्म-क्षेत्रीय स्वर्ग की कल्पना उनके मन्दिरों के बाहर अन्यत्र कहीं नहीं रह गई थी। हठयोगी, नाथपन्थी, अघोरी, औघड़ आदि साधु अनेक प्रकार के चमत्कारों का प्रदर्शन करके जनता की धर्म-बुद्धि को चकित कर रहे थे। निर्गुणोपासना का प्रचार बड़ी तीव्रता से हो रहा था। सामान्य जनता घट के भीतर ईश्वर को खोज सकने में असमर्थ हो निराशा के अन्धकार में भटकने लगी थी। निराकारोपासना का प्रचार करने वाले सन्तों की उल्टी-सीधी बातें समझ सकने के लिए न तो सामान्य जनता में बुद्धि थी और न सामर्थ्य।

धर्म एक पाखण्ड बन गया था। धर्म के नाम पर समस्त देश में अगणित अत्याचारों का बोलबाला था। वर्णाश्रम-धर्म की कठोरता ने हिन्दू-धर्म की नींव हिला दी थी। शंकराचार्य के तत्त्व-दर्शन को सामान्य जनता न तो समझ सकती थी और न वह व्यवहार की ही वस्तु थी। बौद्ध धर्म की बुराइयाँ विभिन्न रूपों में भारतीय धार्मिक जीवन को विषाक्त बनाने में अब भी योग देने के लिए जीवित चली आ रही थीं। इसलाम धर्म के लिए अनुकूल वातावरण पाकर शासन की सहायता से मुल्ला-मौलवी प्रचार-कार्य में प्रयत्नशील थे। किन्तु उनका दृष्टिकोण भी निर्दोष न था। अतः उनके प्रयत्नों से भारतीय धार्मिक जीवन अत्यधिक कटु होता जा रहा था।

रामानुज, मध्व, निम्बार्क, वल्लभ आदि आचार्यों ने इस विषम धार्मिक रिस्थिति की मूल बुराइयों को बड़े ध्यान से समझा और अपने-अपने दृष्टि-णों से उन्हें दूर करने की चेष्टा की। उन्होंने अपने भक्ति-सिद्धान्तों का किया और धर्म-क्षेत्रीय नीरस जीवन को भक्ति के रस से सरस बनाने चेष्टा की।

सामाजिक परिस्थिति

भक्तिकाल मे समाज की दशा भी अत्यन्त शोचनीय थी। राजकीय अत्याचारो के कारण जन-जीवन विभिन्न प्रकार के दुःखों से भरा हुआ था। इस समय जनता मुख्यतः दो वर्गो मे विभाजित थी। एक वर्ग उन लोगों का था, जो धनी थे तथा जिनका शाही दरबार से सम्बन्ध था। दूसरा वर्ग सामान्य जनों का था, जो श्रम करके एवं अनेक प्रकार के कष्ट उठाकर अपना पेट भरते थे। मुसलमान विलास का जीवन व्यतीत करते थे, और जनता आर्थिक उत्पीड़न तथा शोषण के निर्बाध घूमने वाले चक्र मे पिस रही थी। भिक्षा-जीवियो की सख्या निरन्तर बढ़ती जा रही थी। इसका मुख्य कारण यह था कि लोगो को प्रायः काम नही मिलता था। निम्न जातियो से बेगार भी ली जाती थी।

स्त्रियाँ भी धनी घरो मे मजदूरी करने को बाध्य होती थीं। समस्त समाज अन्धविश्वासो से जकड़ा हुआ था। शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी। फलत. अन्धविश्वास और रूढ़ियाँ बढ़ती जा रही थीं। मनुष्यो की बलि देकर अज्ञात शक्तियों को प्रसन्न करने मे लोग विश्वास करते थे। समाज में उन्ही साधु-सन्तों की पूजा होती थी, जो चमत्कार दिखा सकते थे। दैवी प्रकोपो का ताँता बँधा हुआ था। प्रतिवर्ष कोई-न-कोई सकट देश पर आता ही रहता था। कभी अतिवृष्टि के कारण और कभी अनावृष्टि के फलस्वरूप दुर्भिक्ष पड़ जाता था। दुर्भिक्षो के समय जनता की प्राण-रक्षा के लिए शासन की ओर से कोई व्यवस्था नहीं हो पाती थी। दुर्भिक्षो के पश्चात् महामारी फैलती थी, जिसमे लाशो को उठाने वाले भी नही मिलते थे। अनेक प्रकार के कष्टों और सकटो के कारण जनता मे आत्मगौरव की भावना का अभाव हो गया था। नारियों को समाज मे पशुवत् समझा जाता था। वे पति की मृत्यु हो जाने पर शव के साथ जल मरने को कभी-कभी विवश की जाती थी। ईश्वरोपासना के नाम पर विभिन्न देवी-देवताओं, पीरों-फकीरो, सन्तों-महन्तों और पेड़-पौधो तथा कीट-पतगो तक की पूजा प्रचलित थी। कहने का आशय यह है कि भक्ति-काल की सामाजिक दशा सभी दृष्टियों से निराशाजनक थी।

विनयपत्रिका के मूल में युग-प्रेरणा

तुलसीदास जी जिस युग में पैदा हुए थे—उसकी राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियो की चर्चा पीछे की जा चुकी है। इन परिस्थितियों मे

उनके जीवन को पर्याप्त रूप मे प्रभावित किया । विनयपत्रिका के मूल में हमें उनके युग की परिस्थितियों की प्रेरणा पर्याप्त रूप मे निहित पाते हैं । तुलसी ने युग की भयंकर परिस्थितियो से दुखी होकर ही उसे कलियुग का नाम दिया। 'श्रीरामचरितमानस' लिखकर उन्होंने अपने युग की सभी परिस्थितियों की भयंकरता मिटाने की चेष्टा की । घर से बाहर तक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सन्तुलन लाने के लिए उन्होने राम के जीवन की आदर्श कथा तथा राममक्ति का प्रचार किया । किन्तु युग की परिस्थितियो का प्रभाव 'श्रीरामचरितमानस' तक पूर्ण रूप से अपनी अभिव्यक्ति नहीं पा सका । एक कारण यह भी था कि 'मानस' मे तुलसी युग के यथार्थ को स्पष्ट करने के स्थान पर आदर्श के मोह मे अधिक पड़े रहे । किन्तु युग की परिस्थितियों की प्रेरणा इतने से सन्तुष्ट नही हो सकी । अतः तुलसी को 'विनयपत्रिका' लिखनी पड़ी । इस काव्य की रचना के मूल में हमे युग-प्रेरणा पर्याप्त रूप मे निहित मिलती है ।

तुलसी के युग का जन-समाज अत्यन्त दयनीय अवस्था में जीवित था । वह अपनी रक्षा के लिए अलौकिक शक्तियो से प्रार्थना कर रहा था, क्योंकि लोक मे शासन-शक्ति के विभिन्न अत्याचारो से उसका जीवन अवर्णनीय कष्टो से भर गया था । अतः जनवाणी मे त्राहि-त्राहि की ध्वनि गूंज रही थी। कातरता, अधीरता और वेदना से भरे जन-जीवन की वाणी ही विनयपत्रिका मे साकार हुई है । तुलसी का जीवन जिस पीड़ा और कातरता से भरा हुआ है, वह वैयक्तिक होते हुए भी सामाजिक है । उसमे व्यक्ति के माध्यम से समस्त *समाज बोल रहा है । तुलसी के युग की यह सबसे बड़ी प्रेरणा थी, जिसने कवि* को समाज की व्यथा को अपनी व्यथा बनाकर राम के दरबार में विनयपत्रिका भेजने को बाध्य किया । सभी अलौकिक शक्तियो से शरण की जो प्रार्थना जनवाणी मे ध्वनित हो रही थी, वही विनयपत्रिका मे विभिन्न देवीदेवताओं की स्तुति के रूप मे साकार हुई ।

तुलसी ने अपने युग के अन्य कई कटु अनुभव किये थे। वे समाज के अन्तर्गत फैले हुए जाति-पाँति के भेद-भाव, साधुओं के चमत्कार आदि से भी
गये थे । अत. उन्होने विनयपत्रिका लिखकर उन सबका उत्तर देने का
किया । राम की भक्ति मे तन्मय होकर कलियुग की
पाई जा सकती है, *यह* समाज को बतलाना आव-
सबसे बड़ी माँग यह थी कि जागतिक दुःखो से छूट

कारा जिस प्रकार मिले। विनयपत्रिका में राम-भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन किया गया और कलि-पीड़ित जीवो को भक्ति का मार्ग मिला।

तुलसी के युग मे धर्म-साधना का स्वरूप पूर्णत अस्थिर हो गया था। तुलसी को राम की अनन्य भक्ति का प्रतिपादन करने के लिए भी विनयपत्रिका लिखनी पड़ी। उसमे उन्होने जन-आस्था पर प्रहार करने की अपेक्षा समन्वय का एक सर्वग्राह्य मार्ग निकाला। इसीलिए उन्होने किसी देवी या देवता का विरोध करके बहुदेववाद का खण्डन नहीं किया, अपितु सबकी स्तुति करके अन्तिम लक्ष्य 'राम' को प्राप्त करना घोषित किया। जिस प्रकार राजा के दरबार तक पहुँचने से पहले अन्य अनेक छोटे-बड़े अधिकारी मिलते हैं, उसी प्रकार देवी-देवता भी राजा राम के दरबार तक पहुँचने मे मार्ग-गत अधिकारी हैं। तुलसी ने उनकी भी उपेक्षा नहीं की। इस प्रकार जनता का ध्यान अन्तिम साध्य 'राम' की ओर खींचा और उनकी महिमा का बखान किया। इस प्रकार बहुदेव-पूजा के अन्धकार में भटकने वाले लोगों को तुलसी ने राम के रूप में ईश्वर के शाश्वत प्रकाश का दर्शन कराया। उन्होने बड़ी कुशलता से युग की अन्य आडम्बर-पूर्ण साधना-पद्धतियो की ओर से जनता का ध्यान खींचकर साधना का एक सुगम तथा सीधा मार्ग बताने के लिए 'विनयपत्रिका' की रचना की। वस्तुत: यह तुलसी-युग की प्रेरणा का ही फल था कि विनय-पत्रिका तत्कालीन सभी समस्याओं का आध्यात्मिक समाधान प्रस्तुत करने के लिए सरस गेय पद-शैली मे जनता के सामने आई।

साराश यह कि तुलसी सीधे-सादे भक्त-कवि थे। वे तत्कालीन साधु-सन्यासियो और योगियों के समान आडम्बर न तो कर सकते थे और न जानते ही थे। अत: जनता उन्हें चमत्कार दिखा सकने मे असमर्थ पाकर अनेक प्रकार से तङ्ग करती रही। तुलसी को समाज की उस निन्दनीय मनोवृत्ति से ऊबकर राम से शरण की याचना करनी पड़ी और उनके दरबार मे स्थान पाने के लिए विनयपत्रिका लिखनी पड़ी। तत्कालीन शासकीय अत्याचार, धार्मिक असन्तुलन तथा सामाजिक परिस्थिति—सबने मिलकर युग-प्रेरणा का ऐसा रूप धारण किया कि तुलसी को अपनी वेदना को 'विनयपत्रिका' का रूप देना पड़ा।

प्रश्न ३—उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर विनयपत्रिका की रचना-तिथि निर्धारित कीजिए।

उत्तर—'विनयपत्रिका' की रचना-तिथि का पता चलाने के लिए विभिन्न प्रमाणों का संकलन आवश्यक है। तुलसी ने जान-बूझ कर इस काव्य में ऐसा कोई संकेत नहीं दिया, जिससे इसकी रचना-तिथि प्रत्यक्षतः ज्ञात हो सके। डा० माताप्रसाद गुप्त ने इसकी रचना-तिथि के सम्बन्ध में एक पद प्रस्तुत किया है, किन्तु उन्होंने स्वयं भी उस पद को अप्रामाणिक माना है। अतः उस आधार पर कुछ भी कह सकना कठिन है। वह पद इस प्रकार है—

भजि मन राम चरन दिन राती।
रसना कस न भजै तू हरि को क्यों बैठी इठलाती॥
जिनके कहत बहति दुख दारुन सुनि भय ताप नसाती।
लिखा सो सुजस सिया रघुबर को सुनि जुड़ाय हिय छाती॥
संवत सोरह सै इकतीसा जेठ मास छवि स्वाती।
तुलसिदास एक अरज करत है प्रथम विनय की पाती॥

आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय ने भी अपने 'तुलसीदास' ग्रन्थ में विनयपत्रिका की रचना-तिथि पर विचार किया है। उन्होंने लिखा है—

"यह 'विनयपत्रिका' पत्रिका के रूप में बनी और "करी रघुनाथ सही है" से सिद्ध है कि उनके जीवन में ही यह समाप्त हो गई। तुलसीदास ने इसमें यह भी लिखा है—

तुलसीदास अपनाइये कीजै न ढील,
अब जीवन अवधि अति नेरे।

"जीवन अवधि अति नेरे' से वृद्धावस्था का बोध होता है, तो भी यहाँ कठिनाई यह है कि जीवन की अवधि का कोई ठिकाना नहीं। वह साठ वर्ष के उपरान्त तो प्रतिदिन आती हुई दिखाई देती है। विनयपत्रिका की जो प्रति संवत् १६६६ की मिली है, उसका नाम 'रामगीतावली' है। ...... साराश यह है कि 'विनयपत्रिका' की रचना उक्त संवत् १६६६ के अनन्तर ही हुई और इसके कुछ पद फलत. बने भी उसके उपरान्त ही।....... समय की स्थिति को एक ही पद में तुलसी ने बाँधकर रख दिया है—

दीन दयालु दुरित दारिद दुख,
दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है।
देव दुआर पुकारत आरत,
सबकी सब सुख हानि भई है।

× × ×

"इससे पाया जाता है कि इस पद की रचना किसी दुकाल के दूर होने पर ही हुई है। ऐसा दुकाल सवत् १६५५ मे पडा था, इसे हम देख चुके हैं। यदि यह ठीक है, तो इसके आधार पर कहा जा सकता है कि इसकी रचना १६५५ के उपरान्त ही हुई होगी।........अनुमान से यही कहा जा सकता है कि विनय-पत्रिका के कुछ पद १६६६ वि० के बाद भी बनते रहे और जब सब नये बन गये तब 'रामगीतावली' को 'विनयपत्रिका' का रूप मिल गया।"

आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय के उक्त मत मे अनुमान की प्रधानता है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने भी यही अनुमान लगाया है कि विनयपत्रिका गीतावली का ही परिवर्तित सस्करण है, जिसका समय स० १६६६ के कुछ बाद भी हो सकता है। अब पण्डित रामनरेश त्रिपाठी का मत भी देखिए। वे लिखते हैं—

"गोस्वामी जी स० १६४४ के लगभग व्रज गए होगे और वहाँ से लौटते ही 'विनयपत्रिका' के पद रचने आरम्भ कर दिए होगे और इस प्रकार १६६८ तक रचते रहे होंगे।"

इस मत के सम्बन्ध मे हम भी वही कह सकते हैं, जो डा० माताप्रसाद गुप्त ने कहा है। वे लिखते हैं—

"त्रिपाठी जी ने कदाचित् केवल 'विनयपत्रिका' पाठ को लेकर विचार किया है, 'पदावली रामायण' पाठ पर यदि उन्होंने ध्यान दिया होता तो इस प्रकार की कल्पनाएँ वे न करते।"

अर्थात् 'विनयपत्रिका' का रचना-तिथि-सम्बन्धी त्रिपाठी जी का मत कल्पना-मात्र है। अब डा० श्यामसुन्दरदास के मत पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। उन्होने लिखा है—

"इसमें केवल १७६ पद हैं, जबकि और प्रतियों में २८० पद तक मिलते हैं। यह कहना कठिन होगा कि यह शेष १०४ पदों मे से कितने वास्तव में तुलसीदास जी ने बनाए हैं और कितने अन्य लोगों ने अपनी ओर से जोड़ दिए हैं। जो कुछ हो, इसमें सन्देह नहीं कि इन १०४ पदों में से जितने पद तुलसी-दास जी के स्वय बनाए हुए हैं, वे सब सवत् १६६६ और सवत् १६८० के बीच मे बने होंगे।"

उपर्युक्त मत 'विनयपत्रिका' की एक प्राचीन प्रति को आधार बनाकर व्यक्त हुआ है। उस प्रति मे रचना-तिथि सं० १६६६ दी हुई है।

डा० रामकुमार वर्मा ने भी डा० श्यामसुन्दरदास के उपर्युक्त मत का ही समर्थन किया है। वे लिखते हैं—

"यदि यह प्रति प्रामाणिक है तो संवत् १६६६ ही 'विनयपत्रिका (विनयावली) का रचना-काल निश्चित होता है।"

किन्तु जिस प्रति को आधार बनाकर डा० श्यामसुन्दरदास एवं डा० वर्मा ने अपने मत व्यक्त किये हैं, वह डा० माताप्रसाद गुप्त के मत से सम्भवतः मूल प्रति नहीं, अपितु 'प्रतिलिपि' मात्र ही हो। अतः उस पर लिखी तिथि को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

अब थोड़ा बेणीमाधवदास के उस अनुमान पर भी विचार कर लें, जो राम की मिथिला-यात्रा के समय पर आधारित है। वे लिखते हैं—

विदित राम विनयावली,
मुनि तब निर्मित कीन्ह।
सुनि तेहि साखी युत प्रभू,
मुनिहिं अभय कर दीन्ह।
मिथिलापुर-हेतु पयान किए,
सुकृती जन को सुख सान्ति दिए।

इन पंक्तियों में 'मुनि तब निर्मित कीन्ह' के प्रासंगिक अर्थ के आधार पर ही डा० श्यामसुन्दरदास ने यह भी माना है कि 'विनयपत्रिका' सं० १६६६ और १६६९ वि० के मध्य लिखी गई होगी।

इन सब मतों से 'विनयपत्रिका' की रचना-तिथि का विशुद्ध प्रामाणिक निर्णय नहीं होता। तुलसी ने भी ऐसा कोई संकेत नहीं दिया, यह पहले ही कहा जा चुका है। पर यह तो निश्चित है कि तुलसी उस समय वृद्ध हो चुके थे। वे 'विनयपत्रिका' में बार-बार अपने यौवन-काल को कोसते हैं तथा जगत के प्रति भी उनकी निष्ठा समाप्त हो चुकी है। भले ही यह सब उनकी बढ़ती हुई विराग-वृत्ति का परिणाम हो, तथापि यह तो मानना ही पड़ेगा कि वह विराग-वृत्ति भी वृद्धावस्था में ही परिपक्व होती है। तुलसी ने लिखा है—

तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कुपूत कूर,
लटे लट पटनि को कौन परिगहैगो।

ये पंक्तियाँ कवि की वृद्धावस्था की सूचना देती हैं। उन्होंने आगे लिखा है—

> देखत ही आई बिरधाई-
> जो तैं सपनेहुँ नाँहि बुलाई।
> सो प्रकट तनु जरजर जराबस,
> ब्याधि सूल सताबई।
> सिर कंप इंद्रिय-सक्ति प्रतिहत,
> बचन काहु न भावई।

तथा

> खेलत खात लरिकपन गो चलि,
> जोबन जुबतिन लियो जीति।
> रोग बियोग-सोग स्रमसंकुल
> बड़ि बय वृथहि अतीति॥

इन पंक्तियों के आधार पर यही कहा जा सकता है कि तुलसी ने 'विनय-पत्रिका' की रचना अपनी वृद्धावस्था में की। यदि उनका मृत्यु संवत् १६८० सही है तो यह मान लेना भी अनुचित न होगा कि 'विनयपत्रिका' की रचना सं०१६६६ और १६८० वि० के मध्य हुई होगी।

प्रश्न ४—"विनयपत्रिका में तुलसी-युग की विभिन्न परिस्थितियों का पर्याप्त चित्रण मिलता है।" उपयुक्त उद्धरण देकर इस कथन की सार्थकता पर विचार कीजिए।

उत्तर—विनयपत्रिका एक भक्ति-प्रधान काव्य है। उसमें कवि ने विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुति करते हुए भगवान् राम की शरण ली है और वहीं उसकी कातर आत्मा को जागतिक दुखों से मुक्ति का दर्शन हुआ है। अतः उसमें वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता है, तथापि कवि का जीवन जिन परि-स्थितियों में व्यतीत हुआ है, उनका भी पर्याप्त चित्रण अप्रत्यक्षतः उसमें स्थान पा गया है।

वर्णाश्रम-धर्म-व्यवस्था की शिथिलता की ओर संकेत करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं—

स्वारथ-परमारथ कहा, कलि कुटिल बिगोयो बीच।
धरम बरन आस्रमनि के, पैयत पोथि ही पुरान।
करतब बिनु बेस देखिए, ज्यो सरीर बिनु प्रान।

तत्कालीन समाज की पतनावस्था का कई स्थानों पर तुलसीदास जी ने अत्यन्त विस्तार से चित्रण किया है। वे लोगो की पापाचार प्रवृत्ति एवं नास्तिकता को देख-देखकर मन-ही-मन दुखी होते थे। एक स्थान पर 'विनय-पत्रिका' मे उन्होंने लिखा है—

नीति प्रतीति-प्रीति परमिति रति, हेतुवाद हठि हेरि हई है।
आस्रम-बरन-धरम बिरहित जग, लोक-बेद मरजाद गई है ।।
प्रजा पतित पाखण्ड पाप-रत, अपने-अपने रंग रई है।
साति, सत्य, सुभरीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट-कलई है ।।
सीदत साधु साधुता सोचति, खल बिलसत हुलसति खलई है।
परमारथ स्वारथ साधन भए, अभल सफल नहिं सिद्धि सई है ।।
कामधेनु-धरती कलि-गोकर, बिबस बिकल जामति न बई है।
कलि करनी बरनिए कहा लौं, करत फिरत बिनु टहल टई है ।।

इस पद में तुलसी ने विस्तार से यह बतलाया है कि पूर्ण समाज कुरीतियों से ग्रस्त है, मनुष्यों मे छल-दम्भ की वृद्धि हो रही है, सर्वत्र नास्तिकता फैली हुई है और नैतिक सिद्धान्त, धर्मशास्त्र, श्रद्धा, भक्ति आदि समाज मे उठते जा रहे हैं, वर्णाश्रम-धर्म की व्यवस्था समाप्त हो गई है, लोक और वेद की मर्यादाएँ भंग हो रही हैं तथा प्रजा पाप-रत है एव अनेक प्रकार के दुराचार समाज मे आश्रय पा रहे हैं। इस एक पद में ही हमे तुलसी-युग की विभिन्न परिस्थितियों की एक स्पष्ट झाँकी मिल जाती है।

उस समय समाज मे अनेक अन्धविश्वास पनप रहे थे। लोगों को धर्म साधना के वास्तविक रूप का ज्ञान नही था। तीर्थयात्रा आदि मे लोगों की अधिक रुचि थी। योग-साधना का भी पर्याप्त प्रचार था। काम, क्रोध, मद आदि से ग्रस्त जन-समाज ज्ञान और वैराग्य से हाथ धो बैठा था। मुनियों के अनेक मत एवं पुराण-प्रतिपादित नाना पंथ लोगो मे संघर्ष पैदा कर रहे थे। तुलसी लिखते हैं—

तप, तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो।
पायेहि पै जानिबो करम-फल, भरि-भरि बेद परोसो ।।

आगम बिधि जप-जोग करत नर सरत न काज खरो सो।
सुख सपनेहु न जोग सिधि-साधन, रोग-बियोग धरो सो॥
काम क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि, ग्यान बिराग हरो सो।
बहुमत मुनि बहु पंथ पुराननि, जहाँ तहाँ झगरो सो॥

तुलसी को समाज में साधुओं के प्रति बढ़ती हुई अश्रद्धा का भी कटु अनुभव हुआ था, तभी तो उन्होंने लिखा है—

लोग कहैं पोच, सो न सोच न संकोच मेरे,
ब्याह न बरेखी, जाति-पाँति न चहत हौं।
तुलसी अकाज काज राम ही के रीझे खीझे,
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं।

इन पंक्तियों से तत्कालीन समाज में फैली हुई जाति-पाँति और छुआछूत की संकीर्ण भावनाओं की भी एक झलक मिलती है। मुसलमानों के विलास का युग-व्यापी प्रभाव भी तुलसी ने सामाजिक जीवन पर वैयक्तिक अनुभूति का रूप देकर कहीं-कहीं व्यक्त किया है; यथा—

लरिकाई बीती अचेत चित
चंचलता चौगुने चाय।
जोबन जुर जुबती कुपथ्य करि
भयो त्रिदोष भरि मदन बाय।
मध्य बयस धन हेतु गँवाई
कृषी बनिज नाना उपाय।

दुखी-दरिद्रों की समाज में कितनी दुर्दशा तथा उपेक्षा थी, इसकी स्पष्ट झाँकी इन पंक्तियों में मिलती है—

द्वार द्वार दीनता कही,
काढ़ि रद परि पाहूँ।
हैं दयालु दुनी दस दिसा,
दुख - दोष - दलन - छम
कियो न सँभाषन काहूँ।
तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों,
तज्यो मातु पिताहूँ।

किन्तु उस युग में सन्तों की भी कमी न थी, तभी तो तुलसी को जीवित रहने के लिए उनसे सहानुभूति मिल गई थी—

दुखित देखि संतन कह्यो
सोचै जनि मन माहूँ।

समाज में स्वार्थ की मात्रा कितनी बढ़ चुकी थी, इसका एक संकेत तुलसी की निम्नांकित पंक्तियों में मिलता है—

अगुन-अलायक-आलसी जानि अधम अनेरो।
स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजरा को सो।
टटोक, औघट उलटि न हेरो।
× × ×
नाम की ओट पेट भरत हौं पै कहावत चेरो।

राजनैतिक परिस्थितियों की ओर तो तुलसी ने कई स्थानों पर संकेत किया है; यथा—

राज समाज कोटि कसपत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परिमित रति हेतुवाद हठि हेरि हई है॥

राजों का शरण न मिलने पर ही तुलसी भगवान की शरण में गए थे। इससे स्पष्ट है कि तुलसी के युग में असहायों और दीन-दरिद्रों के लिए राम के अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं थी। तुलसी को राम के समान दूसरा दयालु संसार में नहीं मिला था—

राम राखिए सरन, राखि आये सब दिन।
विदित त्रिलोक तिहूँ काल न दयालु दूजो॥

तत्कालीन वैयक्तिक जीवन की अस्थिरता एवं मानसिक वैषम्य की ओर संकेत करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं—

कबहूँ जोग रत, भोग निरत सठ
हठ वियोग बस होई।
कबहूँ मोह बस द्रोह करत बहु × ×
कबहूँ दीन मतिहीन रंकतर
कबहूँ भूप अभिमानी।
कबहूँ मूढ़ पंडित बिडंबरत,
कबहूँ धर्म रत ग्यानी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास जी ने विनयपत्रिका में भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति के साथ युग-परिस्थितियों की पूर्णतः उपेक्षा नहीं की

है। उनकी वाणी में विभिन्न रूपों में समाज के विभिन्न चित्र प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में कहीं-न-कहीं स्थान पा ही गये हैं। सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक—सभी परिस्थितियों की ओर उन्होंने अवसर मिलने पर संकेत किया है। अतः यह कथन सत्य ही है कि "विनयपत्रिका में तुलसी-युग की विभिन्न परिस्थितियों का पर्याप्त चित्रण मिलता है।"

प्रश्न ५—विनयपत्रिका के प्रमुख वर्ण्य-विषय क्या हैं? संक्षेप में प्रत्येक पर विचार कीजिए।

उत्तर—'विनयपत्रिका' अपने नाम के अनुसार, कवि की विनयोक्तियों का कोष है, जिसको उसने अपने आराध्य (राम) के चरणों में समर्पित किया है। अतः स्थूलतः यह कहा जा सकता है कि उनका वर्ण्य-विषय अपने आराध्य राम के प्रति 'विनय' मात्र है। किन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से प्रत्येक पद के विषय की छान-बीन की जाय तो यह तथ्य प्राप्त कर लेना भी कठिन नहीं है कि उसमें कवि ने अपनी विनय-भावना को विभिन्न गौण विषयों के माध्यम से व्यक्त किया है। सामान्यतः हम विनयपत्रिका के वर्ण्य-विषयों को निम्नांकित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) हिन्दू-धर्म में मान्य विभिन्न देवी-देवताओं का परिचय और उनके प्रति श्रद्धाभिव्यक्ति।
(२) धार्मिक स्थानों का परिचय।
(३) सांसारिक जीवन की निस्सारता का वर्णन।
(४) नश्वर जगत् में जन्म लेने के कारण जीवात्मा को लग जाने वाले पापों के प्रति ग्लानि-व्यंजना।
(५) आत्म-रूप को समझने के लिए उसकी अभिव्यंजना।
(६) आत्म-सुधार के लिये मन के प्रति उद्बोधन।
(७) राम की महिमा का वर्णन।
(८) राम की शरण और उसमें प्राप्त आनन्दानुभव।

तुलसी ने अपने विचारों और भावों को इन विषयों के रूप में समस्त विनयपत्रिका में यत्र-तत्र बिखेर दिया है। अतः खोज करके एकत्र करने पर इन सभी विषयों की सामग्री हमें उसमें प्राप्त हो सकती है। यहाँ हम प्रत्येक पर संक्षेप में विचार करेंगे।

१—तुलसी ने प्रारम्भ में ही हिन्दू-धर्म में मान्य देवी-देवताओं का परिचय दे दिया है और उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है। प्रथम पद में हमें गणेश जी का परिचय मिलता है और उनके प्रति कवि की श्रद्धा का दर्शन होता है; यथा—

> गाइए गनपति जगबन्दन।
> संकर - सुवन भवानी - नन्दन।
> सिद्धि-सदन, गज-बदन, बिनायक।
> कृपा-सिन्धु, सुन्दर सब लायक।
> मोदक-प्रिय मुद-मंगल-दाता।
> बिद्या-बारिधि, बुद्धि-बिधाता।
> माँगत तुलसीदास कर जोरे।
> बसहिं रामसिय मानस मोरे॥

इस गणेश-स्तुति में स्पष्टतः तीन बातें दृष्टिगोचर होती हैं। पहले कवि ने गणेश जी का परिचय दिया है, फिर उनकी प्रशंसा की है तत्पश्चात् उनसे राम-सीता की भक्ति-याचना की है। अतः परिचय, प्रश एवं राम-भक्ति-याचना का सुन्दर क्रम हमें तुलसी की राम-भक्ति सम्ब अनन्यता के क्षेत्र में ला खड़ा करता है। उन्होंने इसी क्रम से हिन्दू धर्म मान्य कई प्रमुख देवी-देवताओं की स्तुति की है। गणेश जी की वन्दना पश्चात् क्रमशः सूर्य, शिव, दुर्गा, गंगा, यमुना, हनुमान, लक्ष्मण, भर शत्रुघ्न, सीता और फिर भगवान् के विभिन्न रूपों में राम की स्तुति मिल है। तुलसी ने बड़ी तन्मयता से इन सबका परिचय दिया है, प्रशंसा की और फिर सबसे राम-भक्ति की याचना की है। शिवजी की स्तुति में भी तुल के देव-भावना सम्बन्धी उस क्रम को देखिए—

> जो जाँचिए संभु तजि आन।
> दीनदयालु भक्त-आरति-हर, सब प्रकार समरथ भगवान्॥
> कालकूट-ज्वर-जरत सुरासुर, निज पन लागि कीन्ह बिष-पान।
> दारुन दनुज जगत-दुखदायक, मारेउ त्रिपुर एकही बान॥
> जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत, स्रुति, सकल पुरान।
> सो गति मरन-काल अपने पुर, देत सदासिव सबहिं समान॥

सेवत सुलभ उदार कल्पतरु, पारवती-पति परम सुजान।
देहु काम-रिपु राम चरन-रति, तुलसीदास कहँ कृपानिधान॥

२—विनयपत्रिका का द्वितीय वर्ण्य-विषय है—धार्मिक स्थानों का परिचय। काशी और चित्रकूट—दो स्थानों को प्रधानतः कवि ने अपने वर्णन का विषय बनाया है। प्रारम्भ में देवी-देवताओं के साथ दोनों की स्तुति की है; यथा—काशी का वर्णन करते हुए तुलसी लिखते हैं—

सेइय सहित सनेह देहभरि,
कामधेनु कलि कासी।
समनि सोक-संताप-पाप-रुज,
सकल सुमंगल रासी।
मरजाद चहुँ ओर चरन बर,
सेवत सुरपुर बासी।
तीरथ सब सुभ अंग रोम,
सिवलिंग अमित अविनासी।
अंतरअयन अयन भल, थन फल,
बच्छ बेद-बिस्वासी।
गलकंबल बरुना बिभाति जनु,
लूम लसति सरिता-सी।
दण्डपानि भैरव बिषान,
मलरुचि खलगन भयदा-सी।
लोलदिनेस त्रिलोचन लोचन,
करनघंट घंटा-सी।
मनिकर्निका बदन-ससि-सुन्दर,
सुरसरि सुख सुखमा-सी॥

आगे उन्होंने काशी की महिमा का विस्तार से बखान किया है। चित्रकूट की भी उन्होंने इसी प्रकार विस्तार से स्तुति की है। वे लिखते हैं—

सब सोच विमोचन चित्रकूट।
कलिहरन, करन कल्यान बूट॥
सुचि अवनि सुहावनि आलबाल।
कानन विचित्र, बारी बिसाल॥

मन्दाकिनि-मालिनि सदा सींच ।
बर बारि बिषम नर नारि नीच ॥
साखा सुसृंग, भूरुह सुपात ।
निरझर मधुबर, मृदु मलय बात ॥
सुक, पिक, मधुकर, मुनिबर बिहार ।
साधन प्रसून, फल चारि चारु ॥
भव-घोर घाम-हर सुखद छाँह ।
थप्यो थिर प्रभाव जानकी-नाह ॥

और उसके पश्चात् तुलसी ने चित्रकूट के भक्ति-परक महत्व को स्पष्ट किया है तथा चित्रकूट-वास को रामभक्ति की प्राप्ति के लिए आवश्यक बतलाया है ।

आगे समस्त विनयपत्रिका में स्फुट रूप में काशी और चित्रकूट का नाम यत्र-तत्र मिल जाता है । दोनों ही स्थानों को तुलसीदास जी ने देवताओं के समान ही महत्व प्रदान किया है । भगवान् राम की भक्ति के लिए इन दोनों स्थानों से स्वाभाविक अनुराग आवश्यक बतलाया है ।

३—विनयपत्रिका में तुलसी ने सांसारिक जीवन की व्यर्थता का अनेक पदों में उल्लेख किया है । उन्होंने जग को कहीं रात्रि का रूपक दिया है और कहीं शरीर तथा घर की ममता को घन-मध्य क्षण-भर चमक कर समाप्त हो जाने वाली बिजली माना है । वे कहते हैं—

जागु-जागु जीव जड़ ! जोहै जग जामिनी ।
देह-गेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी ।

वे संसार को अनेक प्रकार के दुःखों का घर बतलाते हैं—

सुभग सेज सोवत सपने, बारिधि बूड़त भय लागै ।
कोटिहुँ नाव न पार पाव सो, जब लगि आपुन जागै ।
अनविचार रमनीय सदा संसार भयंकर भारी ।
× × ×
तुलसीदास सब बिधि प्रपंच जग जदपि झूठ स्रुति गावै ।

जग में ... क प्रकार के मलों से स्वाभाविक सम्बन्ध
हो ... जीव पूर्णतः व्यर्थ प्रतीत होता है । तुलसी

मोह जनित मल लाग विविध विधि,
कोटिहु जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास निरत चित,
अधिक अधिक लपटाई।
नयन मलिन परनारि निरखि,
मन मलिन विषय सँग लागे।
हृदय मलिन बासना-मान-मद,
जीव सहज सुख त्यागे।

वे अपने जन्म की व्यर्थता पर इस प्रकार पश्चात्ताप करते हैं—

कछु ह्वै न आई गयो जनम जाय।
अति दुरलभ तनु पाइ कपट तजि न राम मन-वचन-काय।

४—जीवन की व्यर्थता को समझ लेने के बाद तुलसी को अपने जागतिक पापों के प्रति हार्दिक ग्लानि हो जाती है। वे स्वयं को सब प्रकार से हेय समझने लगते हैं। आत्म-दोषों के प्रति जैसी ग्लानि तुलसी के पदों में मिलती है, वैसी बहुत कम कवियों के काव्य में दृष्टिगोचर होती है। वे अपने को वासना-ग्रस्त पाकर कह उठते हैं—

काम-लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि।
× × ×
किए सहित सनेह अघ जे, हृदय राखे चोरि।
× × ×
लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों, गरे आसा डोरि।
× × ×
एतिहूँ पर तुम्हरो कहावत, लाज अँचई घोरि।

वे अपने को सबसे अधिक 'खोटा' समझ कर कहते हैं—

राम सो बड़ो है कौन, मोसो कौन छोटो।
राम सो खरो है कौन, मोसो कौन खोटो॥
लोक कहै राम को गुलाम हौं कहावौं।
एतो बड़ो अपराध भौ न मन बावौं॥

उनकी आत्म-ग्लानि यहाँ तक बढ़ जाती है कि वे यह कहने को तैयार हो जाते हैं—

फीजै मोको जम जातनामई ।
राम ! तुमसे सुचि सुहृद साहिबहिं मैं सठ पीठि दई ॥
गरभवास दस मास पालि पितु-मातु-रूप हित कीन्हों ।
जड़हिं-बिबेक, सुसील खलहिं, अपराधिहिं आदर दीन्हों ॥
कपट करौं अन्तरजामिहुँ सों, अघ ब्यापकहिं दुरावौं ।
ऐसेहुँ कुमति कुसेवक पर रघुपति न कियो मन बावौं ॥
उदर भरौं किंकर कहाइ बेच्यौ बिषयन हाथ हियो है ।
मोसे बंचक को कृपालु छल छाँड़ि कै छोह कियो है ॥

५—अपने पाप-पूर्ण जीवन के प्रति ग्लानि उत्पन्न होने पर तुलसीदास जी आत्माभिव्यंजना मे लीन होते हैं और इस प्रकार भगवान् के निकट 'स्व' की पूर्णत: अभिव्यक्ति कर देना चाहते हैं । कभी तो वे कहते हैं—

द्वार-द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहू ।
× × ×
तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु-पिताहू ।
× × ×
दुखित देखि संतन कह्यो, सोचै जनि मन माहूँ ।

और कभी कहते हैं—

कहा न कियो कहाँ न गयो, सीस काहे न नायो ?
राम रावरे बिन भये जन जनमि जनमि,
जग दुख दसहू दिसि पायो ।
आस बिबस खास दास ह्वै नीच प्रभुनि जनायो ।
हा हा करि दीनता कही द्वार-द्वार,
बार-बार, परी न छार मुह बायो ।
असन बसन बिनु बावरो जहँ-तहँ उठि धायो ।
महिमा मान प्रिय प्रानते तजि खोलि खलनि—
आगे, खिनु खिनु पेट खलायो ।
नाथ ! हाथ कछु नाहिं लग्यो, लालच ललचायो ।

आत्म-रूप पर विचार करते हुए वे आगे लिखते हैं—

लरिकाई बीतो अचेत चित,
चंचलता चौगुने चाय ।

जोवन-जुर जुबती कुपथ्य करि,
भयो त्रिदोस भरि मदन बाय।
मध्य बयस धन-हेतु गँवाई,
कृषी बनिज नाना उपाय।
राम बिमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ,
निसि बासर तयो तिहूँ ताप।
सेये नहिं सीतापति सेवक,
साधु सुमति भलि भगति भाय।

६—तुलसीदास जी यह समझ लेते हैं कि जीव जगत में आकर विभिन्न वासनाओं में फँस जाता है और जन्म-जन्मान्तर तक उन्हीं में पड़ा भटकता रहता है, ईश्वर को नहीं पहचान पाता। अतः वे बार-बार अपने मन को समझाते हैं और आत्म-सुधार करके भगवान् की भक्ति में लग जाना चाहते हैं। उन्होंने अनेक पदों में अपने मन को इसी प्रकार उद्बोधन दिया है; यथा—

राम-राम रटु, राम-राम रटु, राम-राम जपु जीहा।
राम नाम-नव-नेह मेह को मन ! हठि होहि पपीहा॥
× × ×
एक अंग मग अगमु गवन कर बिलमु न छिन-छिन छाहैं।
तुलसी हित अपनो अपनो दिसि निरुपधि नेम निबाहैं॥

उन्होंने अपने मन को शरीर-धारण का फल बतलाते हुए समझाया है कि—

मन इतनोई या तनु को परम फलु।
सब अंग सुभग बिंदु माधव छबि।
तजि सुभाव अवलोकि एक पलु।

उन्होंने राम-नाम के 'जाप' पर बहुत बल दिया है। वे कहते—

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे।
× × ×
राम नाम जपु जिय सदा सानुराग रे।
× × ×

राम राम राम जीह जौलौं तू न जापि है।
तौं लौं तू कहूँ ही जाय तिहूँ ताप तापि है।

× × ×

तुलसी तिलोक, तिहूँ काल तोसे दीन को।
राम नाम ही की गति जैसे जल मीन को।

× × ×

सुमिरि सनेह सो तू नाम राम राम को।
संबल निसंबल को, सखा असहाय को।

तुलसी ने मन को चेतावनी दी है कि मनुष्य का दुर्लभ शरीर बार-बार नहीं मिलता, इसलिए कर्म, वचन और हृदय से हरि का भजन करके उसे सफल बनाना चाहिए—

मनु ! पछितैहै अवसर बीते।
दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु
करम वचन अरु ही ते

× × ×

सुत बनितानि जानि स्वारथ रत,
न करु नेह सबही ते।
अन्तहु तोहि तजेंगे पामर !
तू न तजै अबही ते।

फिर कहते हैं—

मन मेरे, मानहि सिख मेरी।
जो निजु भगति चहै हरि केरी।

× × ×

सुनु सठ काल ग्रसित यह देही।
जनि तेहि लागि विदूषहि केही।

७—मन को समझाने के बाद तुलसी ने विनयपत्रिका में राम की महिमा को अपना वर्ण्य-विषय बनाया। उन्होंने विस्तार से राम के गुणों का वर्णन किया है तथा राम की भक्तों के उद्धार की दयार्द्रशीलता का बखान किया है। यह विषय विनयपत्रिका के सबसे अधिक पदों में स्थान पाता है। वे कभी

तो कहते हैं कि राम का नाम कलियुग में समस्त प्रकार के तापों से जीव को मुक्त करने वाला है—

> कलि नाम कामतरु राम को।
> दलनिहार दारिद दुकाल दुख, दोष घोर घनघाम को।

कभी कहते हैं कि—

> कलि न विराग जोग जाग तप त्याग रे,
> राम सुमिरन सब विधि ही को राज रे।
> × × ×
> राम नाम के जपे जाय जिय की जरनि।
> कलि काल अपार उपाय ते अपाय भए,
> जैसे तम नासिबे को चित्र के तरनि।

उन्होंने राम की स्तुति करते हुए उनकी महिमा का अत्यन्त गौरवपूर्ण वर्णन किया है। एक उदाहरण देखिए—

> सन्तसंताप-हर विश्व-विश्रामकर
> राम कामारि अभिरामकारी।
> शुद्ध बोधायतन सच्चिदानंदघन
> सज्जनानंद वर्धन खरारी।
> सील-समता-भवन, विषमता-मति-शमन,
> राम रमारमन, रावनारी।
> × × ×
> नित्य निर्मुक्त, संयुक्त गुण, निर्गुणानंद
> भगवन्त न्यामक नियंता।
> विश्व-पोषन भरन, विश्व-कारन-करन
> सरन तुलसीदास त्रास हन्ता।

८—राम की महिमा को समझ लेने के पश्चात् तुलसी पूर्णतः उनकी शरण ले लेते हैं और उसी में आनन्दानुभव करते हैं। स्वयं को राम की शरण में छोड़कर तुलसी ने अनेक प्रकार से अपने मन-हृदय का परिचय दिया है। उनकी विनयशीलता की समस्त करुण एवं मार्मिक अभिव्यक्ति उनके इस प्रकार के पदों में पाई जाती है। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं। राम की शरण में पहुँचकर वे कहते हैं—

और कहँ ठौर रघुबंस-मनि ! मेरे।
पतित पावन प्रनत-पाल असरन सरन,
बाँकुरे बिरद बिरदैत केहि केरे।

उन्हें राम के अतिरिक्त अन्य कहीं शरण नहीं मिल सकती—

दीनबन्धु ! दूरि किये दीन कोन दूसरी सरन,
आपको भले हैं सब, आपने को कोऊ कहूँ
सब को भलो है राम ! रावरो चरन।
× × ×
सील-सिन्धु ! तोसों ऊँचो नीचियो कहत सोभा
तोसों तुही तुलसी को आरति हरन।

वे दिन-रात राम की कृपा की प्रतीक्षा करते रहते हैं—

नाथ ! कृपा ही को पंथ चितवत दीन हौं दिन राति,
होइ धौं केहि काल दीनदयाल, जानि न जाति।

वे यह कामना करते हैं कि संत का स्वभाव प्राप्त कर निरन्तर पर-हित में लीन रहूँ और किसी से कोई आशा न करूँ—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें सन्त सुभाव गहौंगो।।
जथालाभ सन्तोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो।।

साराश यह है कि विनयपत्रिका के वर्ण्य-विषयों में एक क्रम मिलता है, जिसका राम-भक्ति की दिशा मे उत्तरोत्तर विकास हुआ है। समस्त वर्णन मे विनय की उदात्त भावना व्याप्त है। वर्ण्य-विषयो मे विविधता होते हुए भी विचार की एकता पाई जाती है। तुलसी ने राम-भक्ति की प्रतिष्ठा के लिए सभी वर्ण्य-विषयो का सुन्दर ढग से आयोजन किया है और उसी के अनुसार उनकी कल्पना और भावना रमी है।

प्रश्न ६—सक्षेप में विनयपत्रिका की विनय-पद्धति पर सोदाहरण विचार कीजिए।

उत्तर—'विनयपत्रिका' महाकवि तुलसीदास की काव्य-कला की अनुपम सृष्टि है। इस काव्य मे कवि का हृदय अत्यन्त व्यापक रूप मे अभिव्यक्त

हुआ है। उसमें हमें दैन्य-भाव का अत्यन्त मार्मिक चित्रण मिलता है। कवि कलियुग की यातनाओं से पीड़ित होकर अपने उपास्य भगवान् राम की शरण में जाना चाहता है। उसके जीवन में गहरी वेदना भरी हुई है। यह वेदना केवल उसके जीवन की ही वेदना नहीं है, अपितु उसमें मानव-मात्र की व्यथा का अनन्त सिन्धु लहरा रहा है। तुलसी इस वेदना से मुक्ति पाने के लिए राजा राम के दरबार में एक प्रार्थना-पत्र—विनयपत्रिका भेजते हैं। राज-दरबार के सभी नियमों का निर्वाह करते हुए वे अपनी व्यथा राम के कानों तक पहुँचाना चाहते हैं, अतः वे पूर्णतः उस पद्धति का अनुसरण करते हैं, जिसका एक राजा के दरबार में प्रार्थना-पत्र पहुँचाते समय पालन करना अनिवार्य होता है। यही कारण है कि हमें उनकी विनयपत्रिका में प्रारम्भ से अन्त तक एक क्रम मिलता है। यही क्रम तुलसी की विनय-पद्धति को जन्म देता है। यहाँ हम संक्षेप में विनयपत्रिका की इस विनय-पद्धति पर विचार करेंगे।

किसी भी राजा के दरबार में अनेक दरबारी होते हैं। जिसकी पहुँच इन दरबारियों तक नहीं होती, राजा तक उस व्यक्ति की पहुँच सरलता से नहीं हो सकती। अतः राजा के पास पहुँचने से पूर्व इन दरबारियों को प्रसन्न कर लेना आवश्यक है। राजा के पास सीधे पहुँच कर अपनी प्रार्थना सुना डालने पर यह सम्भव हो सकता है कि दरबारी कार्य-सिद्धि न होने दें—राजा को कुछ-का-कुछ सुझा दें। यदि वे प्रार्थी पर प्रसन्न हैं, तब ऐसी शंका के लिए अवकाश नहीं रह जाता; साथ ही उनको प्रसन्न करके राजा से उनके द्वारा अपनी 'सिफारिश' भी कराई जा सकती है, किन्तु दरबारियों को प्रसन्न कर लेने मात्र से प्रार्थना-पत्र स्वीकार नहीं हो जाता। राजा की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए कतिपय अन्य आवश्यक बातें और होती हैं, जिनकी पूर्ति प्रार्थी को करनी पड़ती है। कहने का आशय यह है कि किसी भी राजा तक अपनी विनय पहुँचाने के लिए एक पद्धति-विशेष का अनुसरण करना पड़ता है, अन्यथा विनयपत्रिका (प्रार्थना-पत्र) के स्वीकृत होने की सम्भावना नहीं रहती। तुलसी ने भी राजा के दरबार में लौकिक यातनाओं से मुक्ति पाने के लिए जो विनय-पत्रिका भेजी है, उसमें उस पद्धति का बड़ी सावधानी से अनुसरण किया है।

सबसे पहले तुलसी ने राजा श्रीराम के दरबारी देवताओं की क्रमशः स्तुति की है, किन्तु इस स्तुति में उन्होंने उनकी भक्ति नहीं की, भक्ति तो वे राजा

राम की ही चाहते हैं, जैसा कि प्रत्येक देवता के लिए की गई स्तुति। अन्तिम चरण में याचना निवेदन किया है। यथा, प्रथम स्तोत्र में ही कहते हैं—

गाइये गनपति जगबंदन।
संकर सुवन भवानी-नन्दन॥
× × ×
मांगत तुलसीदास कर जोरे।
बसहि राम-सिय मानस मोरे॥

राम-सीता की यह भक्ति क्यों मांगी गई है? राम को प्रसन्न करने के लिए आवश्यक उनकी विनयपत्रिका किस प्रकार स्वीकृत होगी? गणेशजी की वन्दना उन्होंने सबसे पहले इसीलिए आवश्यक समझी, क्योंकि वे 'सिद्ध-सदन' तथा राम के देव-दरबार के द्वारपाल हैं। बिना उनकी आज्ञा के तुलसी को द्वार-प्रवेशाज्ञा कैसे मिल सकती है?

गणेश जी की वन्दना के पश्चात् तुलसी ने क्रमशः सूर्य, शिव, देवी (शक्ति) गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की स्तुति विस्तार से की है। इन सबको प्रसन्न करने में भी तुलसी का राम को प्रसन्न करने का उद्देश्य ही निहित है, क्योंकि इन सबका अन्य देवताओं की अपेक्षा राम से अधिक निकट का सम्बन्ध है। सूर्य का राजा राम के अवतार के वंश से सम्बन्ध है, अतः गणेश जी के पश्चात् उनकी स्तुति आवश्यक हुई। फिर शिव और शक्ति का क्रम है, क्योंकि शिव राम के भक्त और शक्ति राम की माया की अभिव्यक्ति हैं। तुलसी कहते हैं—

दुसह दोष-दुख दलनि, करु देवि दाया।
विश्व-मूलासि, जनसानुकूलासि,
कर शूलधारिनी महामूलमाया।
× × ×
देहि मा, मोहि पन प्रेम यह नेम निज,
राम घनश्याम तुलसी पपीहा।
विष्णु-पदकंज मकरंद इव अम्बुवर वहसि,
दुख दहसि अघवृन्द विद्राविनी।
× × ×

> देहि रघुबीर-पद-प्रीति निरभर मातु,
> दास तुलसी त्रासहरनि भवभामिनी।

राम के चरणों से निस्सृत गंगा को प्रसन्न करके तुलसी सरलता से उन चरणों तक पहुँच सकते हैं, अत: गंगा की स्तुति भी उन्हें आवश्यक प्रतीत हुई। कहने का आशय यह कि इसी प्रकार उन्होंने पूर्वोक्त सभी देवताओं की स्तुति करके राम की भक्ति की याचना की है। राम के दरबार में प्रवेश करके सभी प्रमुख देवताओं को प्रसन्न करने का मार्ग उन्होंने सरलता से प्राप्त कर लिया है।

किन्तु दरबारियों को प्रसन्न कर लेने से ही काम नहीं चल जाता। विनय-पत्रिका पहुँचा देना मात्र तुलसी का उद्देश्य नहीं है, अपितु वे अपनी विनय की स्वीकृति भी चाहते हैं, अत: वे उन सभी उपायों को पूर्ण कर लेना चाहते हैं, जो तदर्थ अपेक्षित हैं। जब किसी सामान्य व्यक्ति से अपना काम कराने के लिए उसकी मनोदशा का ध्यान रखना आवश्यक होता है, जिस समय वह थका या क्रुद्ध हो उस समय सीधा काम भी बिगड़ जाने की सम्भावना रहती है तब राम तो एक बहुत बड़े राजा हैं—समस्त चराचर जगत की व्यवस्था का उन पर भार है। अत: उनकी मनोदशा का ध्यान रखे बिना सीधे उनके पास पहुँच कर अपनी विनय सुना देने से किस प्रकार काम बन सकता है? तुलसी इस सत्य से अपरिचित नहीं। अत: वे राम की मनोदशा के अनुकूल समय पाकर ही उनके सामने अपनी 'विनयपत्रिका' रखना चाहते हैं, किन्तु राम किस समय प्रसन्न मुद्रा में होंगे? इसका तुलसी को पता किस प्रकार चले? अत: बड़ी चतुराई का परिचय देते हुए तुलसी एक अत्यन्त सरल मार्ग खोज लेते हैं। वे अपनी विनय राम को स्वयं न सुनाकर माता सीता के माध्यम से पहुँचाते हैं। पति के क्लान्त-श्रान्त दशा में घर आने पर पत्नी उसे अपनी सेवाओं से प्रसन्न कर लेती है और वही भली प्रकार समझ भी सकती है कि पति को कौन-सी बात किस समय सुनाने से कौन-सा काम बन सकता है। अत: तुलसी भी माता सीता की इन मार्मिक शब्दों से वन्दना करते हैं—

> कबहुँक अम्ब अवसर पाइ।
> मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ॥

दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी-दास कहाइ॥
बूझिहैं 'सो है कौन', कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥
जानकी जगजननि जन की किये बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव-नाथ-गुनगन गाइ॥

इन पंक्तियों में तुलसी ने अपनी विनय सुनाने की सम्पूर्ण कुशलता व्यक्त कर दी है। वे जानते हैं कि राम को माता सीता ही अधिक प्रभावित कर सकती हैं। वे ही जान सकती हैं कि राम की मुद्रा किस समय कैसी रहती है। अतः तुलसीदास सीता को 'माता' कहकर सबसे पहले उनका वात्सल्य प्राप्त करते हैं। फिर कहते हैं कि हे माता! कभी, जब अवसर मिल जाय, राम को मेरी भी याद दिला देना। कैसी चातुर्यपूर्ण चाटुचातुरी के साथ तुलसी ने जानकी के द्वारा राम तक अपनी विनय पहुँचाने की चेष्टा की है! वे यह नहीं चाहते कि राम को मेरी कहानी एकदम सुना दी जाय। किसी भी बात को कहने तथा प्रभावशाली बनाने के लिए श्रोता के हृदय की तदनुकूल अवस्था होनी चाहिए। अतः तुलसी अपनी याद दिलाने के पूर्व यह और चाहते हैं कि पहले राम के आगे किसी 'करुण कथा' की चर्चा की जाय, जिससे राम का हृदय द्रवित होगा तो वे तुलसी की करुण कथा भी रुचिपूर्वक सुन सकेंगे। यहीं तक नहीं, आगे की पंक्तियाँ भी तुलसी की विनय सुनाने की अद्भुत पद्धति का उत्कृष्ट रूप पाठक के सामने प्रस्तुत करती हैं। वे कहते हैं कि हे माता! करुण कथा चलाने के पश्चात् मेरी दीनता की कहानी राम को सुनाना और बताना कि वह ऐसा दीन-हीन व्यक्ति उनकी दासी का ही दास है—तुलसीदास। ...के दास में कितना विनय-भाव भर दिया है तुलसी ने! और फिर जिस ...ति से उन्होंने अपनी 'बिगरी' के 'बनने' की आशा की है, वह आशा उनकी ...के ही अनुकूल है।

...स्तुति के पश्चात् तुलसी स्वयं को राम के निकट पहुँच गया ...सभी प्रमुख दरबारियों से लेकर रानी सीता तक को प्रसन्न कर ...फिर तुलसी को राम के निकट पहुँचने तथा विनय सुनाने से ...है? इसीलिए तुलसी ने सीता की स्तुति के पश्चात् स्वयं को ...विस्तार से उनकी स्तुति की है। इस स्तुति में तुलसी ने

विस्तार से राम की महिमा का बखान किया है, जिसमे श्रीकृष्ण स्तुति, दशावतार कथा, बिन्दु-माधव-प्रार्थना और शक्ति को भी स्थान मिल गया है। ऐसा करके तुलसी ने राम के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। जिसको अपनी विनय सुनानी है उसके गौरव का स्मरण करना भी तो आवश्यक है, अन्यथा विनय का प्रभाव ही क्या होगा? यह सब कर चुकने के पश्चात् तुलसी ने अत्यन्त उन्मुख हृदय से अपनी विनय-भावना को राजा राम के सम्मुख अभिव्यक्त कर दिया है। इस अभिव्यक्ति में उनका दैन्यभाव, आत्म-प्रकाशन तथा दुख-निवेदन अत्यन्त स्पष्ट तथा मार्मिक भाषा मे व्यक्त हुआ है। यही विनयपत्रिका का मूल भाग है, जो विनय की शालीनता एवं पटुता-पूर्ण एक विशेष पद्धति पर उस विनय को स्वीकार करने वाले अधिकारी के सम्मुख प्रकट हुआ है। तुलसी ने अपने जन्म-जन्मान्तर की दुखद कहानी को लेकर अपनी करुणावस्था का राम को परिचय कराया है तथा अनेक प्रकार से आत्म-ग्लानि में गलते हुए अपने मन को समझाया है।

विनय सुनाने वाले के लिए तुलसी की यह पद्धति भी अनुकरणीय है। आत्म-दोष-दर्शन और आत्म-ग्लानि की यह चर्चा विनय के अधिकारी के सम्मुख करना उद्धार के लिए की गई प्रार्थना से अधिक प्रभावोत्पादक हो सकता है—यह रहस्य तुलसी जैसे प्रतिभासम्पन्न अधिकारी भक्त को ही ज्ञात हो सकता था। देखिए, बार-बार यह कहने की अपेक्षा कि 'हे राम! मेरा उद्धार करो' वे अपनी दुर्दशा सुनाकर तथा आत्म-ग्लानि की भयंकर ज्वाला मे जलते हुए स्वत. राम के हृदय में उद्धार की इच्छा उत्पन्न कर देना चाहते हैं—

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिये सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो॥
सीतल मधुर पियूष सहज सुख, निकटहिं रहत दूरि जनु खोयो।
× × ×
कैसे देउँ नाथहिं खोरि?
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि, भगति परिहरि तोरि॥
× × ×
एतेहुँ पर तुम्हारो कहावत, लाज अंचई घोरि।
निलजता पर रीझि रघुवर, देहु तुलसिहि छोरि॥

वस्तुतः यह विनयपत्रिका जिसमें तुलसी ने अपने हृदय की समस्त व्यथा-वेदना घोल दी है, राम के आगे ही लिखी गई है—चाहे राम उसको सुन रहे हों, चाहे न सुन रहे हों। लेखन-कार्य पूर्ण हो जाने के पश्चात् पत्रिका-रूप में अपनी विनय-कथा को तुलसी श्रीराम के कर-कमलों में समर्पित कर देना चाहते हैं। किन्तु यह कार्य भी वे स्वयं नहीं करना चाहते। आखिर राम राजा हैं और त्रिलोक के राजा हैं। जब सामान्य अधिकारी के पास भी उसका एक 'पेशकार' होता है, जो प्रार्थियों से प्रार्थना-पत्र लेकर अधिकारी के सम्मुख प्रस्तुत करता है, तब राजा के दरबार में कोई प्रस्तुत-कर्ता न हो—यह कैसे माना जा सकता है ? ऐसी दशा में अपनी विनयपत्रिका उस प्रस्तुतकर्त्ता द्वारा न पहुँचाकर सीधे जाकर स्वयं प्रस्तुत कर देना भी विनय की पद्धति के प्रतिकूल कार्य होगा। तुलसी ऐसा कैसे कर सकते थे ? अतः उन्होंने भी हनुमानजी एवं लक्ष्मणजी से प्रार्थना की है कि उनकी विनयपत्रिका को राम के सम्मुख प्रस्तुत कर दें—

> पवन-सुवन, रिपु-दमन, भरत लाल, लखन दीन की।
> निज निज अवसर सुधि किए, बलि जाऊँ।
> दास आज पूजि है खास खीन की।
> राज द्वार भली सब कहैं साधु समीचीन की।
> सुकृत सुजस साहिब कृपा स्वारथ परमारथ।
> गति भए गति - बिहीन की।

फिर वही हुआ जो तुलसी चाहते थे। राम के दरबार में जहाँ अनेक देवता विराजमान थे, लक्ष्मण ने हनुमान तथा भरत की रुचि देखकर तुलसी की 'विनयपत्रिका' प्रस्तुत कर दी और कहा—

> कलिकालहु नाथ ! नाम सों परतोति-प्रीति
> एक किंकर निबही है।

दरबार के सब देवता तुलसी से अपनी स्तुति सुनकर प्रसन्न तो हो भी चुके थे, अतः जब 'विनयपत्रिका' प्रस्तुत हुई तथा लक्ष्मण ने कलियुग में भी राम की भक्ति दृढ़तापूर्वक करने वाला एकमात्र भक्त तुलसी को घोषित किया तो तुरन्त वे सभी देवता कह उठे कि "हाँ, यह सब पूर्णतः सत्य है। हम लोग भी तुलसी की भक्ति की दृढ़ता को जानते हैं।"

तुलसी के शब्दों में—

सकल सभा सुनिलै उठी, जानी रीति रही है।
कृपा गरीब-निवाज को,
देखत गरीब को साहब बाँह गही है।

और फिर—

बिहँसि राम कह्यो 'सत्य है,
सुधि मैं हूँ लही है।'

इन पंक्तियों में "सुधि मैं हू लही है" पंक्ति से प्रतीत होता है कि राम को किसी ने पहले से ही तुलसी की सुधि, दिला दी थी। यह सुधि दिलाने वाला माता सीता के अतिरिक्त अन्य कौन हो सकता है, जिनसे तुलसीदास जी पहले ही यह प्रार्थना कर चुके थे कि "सुधि द्याइबी कछु करुण कथा चलाइ।" जब मातेश्वरी सीता ने तुलसी की 'सिफारिश' कर दी तब फिर भला उनकी 'विनय पत्रिका' अस्वीकृत कैसे हो सकती थी? राम ने उसे स्वीकार कर लिया और तुलसी की विनय सफल हो गई, वे कृतकृत्य हो गए—

मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की,
परी रघुनाथ हाथ सही है।

निष्कर्ष यह कि तुलसी ने 'विनयपत्रिका' में प्रारम्भ से अन्त तक अत्यन्त संयत रूप में राज-दरबार के नियमों का पालन करते हुए विनयपत्रिका प्रस्तुत करने की एक पूर्ण तथा सफल पद्धति का अनुसरण किया है। यह पद्धति इतनी प्रभावपूर्ण तथा सामाजिकता एवं मनोवैज्ञानिकता से भरी हुई है कि उसका अनुसरण करने वाला व्यक्ति अपनी विनयपत्रिका को विफल होते कभी नहीं देख सकता। राम को तुलसी ने अत्यन्त विनयशील बनकर सुन्दर ढंग से प्रभावित किया है और अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त की है।

प्रश्न ७—उपयुक्त उद्धरण देते हुए 'विनयपत्रिका' के अन्तर्गत तुलसी के दार्शनिक दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—'विनयपत्रिका' में तुलसीदास ने राममक्ति की प्रतिष्ठा की है। उन्होंने 'मानस' में अपने भक्त-रूप को जिस पद्धति से प्रकट किया है उससे भिन्न पद्धति का अनुसरण करके उन्होंने विनयपत्रिका में अपनी अनन्य राम-भक्ति का परिचय दिया है। उसमें हम उनके दार्शनिक विचारों की ठोस पृष्ठभूमि का दर्शन करते हैं। प्रारम्भ से अन्त तक समस्त 'विनयपत्रिका' को

पढ़ जाने पर उनके दार्शनिक दृष्टिकोण का जो रूप हमारे सामने आता है, उसे निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत सरलता से समझा जा सकता है—

(१) जगत—तुलसी ने शंकराचार्य के प्रभाव को स्वीकार करते हुए संसार को मिथ्या माना है तथा लिखा है—

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग-जामिनी ।
देह-गेह-नेह जानि जैसे घन दामिनी ॥
सोवत सपने सहै संसृति सताप रे ।
बूढ़ो मृगवारि, खायो जेवरी को साँप रे ॥

'विनयपत्रिका' की ये पंक्तियाँ तुलसी के जगत्-सम्बन्धी इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करती हैं कि जगत् मृग-जल, रज्जु-सर्प तथा रात्रि के समान मिथ्या एव भयंकर है। वे उसकी भ्रमात्मकता के सम्बन्ध मे एक अन्य पद मे लिखते हैं—

जग नभ-बाटिका रही है फल फूलि रे ।
धुआँ के से धौरहर देखि तू न भूलि रे ॥

वे यह मानते हैं कि मिथ्या होने पर भी यह जगत सत्य प्रतीत होता है, इसका कारण जीव का ईश्वर-कृपा से वंचित हो जाना है—

जद्यपि मृषा सत्य भासै
जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी ।

तुलसीदास के जगत्-सम्बन्धी दृष्टिकोण की केवल यही सीमा नहीं है। वे मिथ्या वस्तु के विषय मे सत्यासत्य का विचार करना भी व्यर्थ समझते हैं, क्योंकि उसके कारण जीव को अपना ज्ञान भी नहीं रहता। अतः वह जगत् के सम्बन्ध में सत्य, असत्य तथा सत्यासत्य सम्बन्धी तीनों दृष्टिकोणों को तीन भ्रम बतलाते हैं और इन्हीं तीनो से बाहर निकलने का परामर्श देते हैं—

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ
जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम
सो आपन पहचानै ।

और इसका कारण यह है कि जगत् ब्रह्म की एक अनोखी रचना है—

देखत तब रचना विचित्र अति,
समुझि मनहिं मन रहिये ।

उनकी दृष्टि में जगत् "शून्य भीति पर बना चित्र" है, जिसमें कोई रंग नहीं है तथा यह चित्र इतना भयकर है कि—

धोए मिटे न, मरै, भीति दुख
पाइय यहि तनु हेरे।
रविकर नीर बसै अति दारुन
मकर - रूप तेहि माहीं।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर
पान करन जे जाहीं।

मिथ्या जगत् की इस भयंकरता के कारण ही तुलसी मुक्ति के लिए आकुल हैं।

(२) माया—प्रश्न यह है कि जो जगत् मिथ्या है, उसकी प्रतीति क्यों होती है। तुलसी ने 'विनयपत्रिका' में इस शंका का समाधान भी किया है। उन्होंने इस सम्बन्ध मे शंकराचार्य के मायावाद की शरण ली है। माया को स्वीकार करते हुए वे कहते हैं—

माया बस स्वरूप बिसरायो,
तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो।

उन्होंने माया के सम्बन्ध मे आगे लिखा है—

तेहि ईस की हौं सरन,
जाकी बिषम माया गुनमई।
जेहि किए जीव-निकाय बस,
रस-हीन दिन-दिन अति नई।

यह माया ब्रह्म के अधीन है तथा जीव इसके अधीन है। तुलसीदास कहते हैं—

हौं जड़ जीव ईस रघुराया।
तुम मायापति हौं बस माया॥

इस माया से जीव को तब तक मुक्ति नहीं मिल सकती, जब तक राम की कृपा न हो—

अस कछु समुझि परत रघुराया।
बिनु तव कृपा दयालु दास-हित,
मोह न छूटे माया।

जब प्रभु ही उसे वर्जित करें, तभी वह माया जीव को अपने पाश से मुक्त कर सकती है—

> हौं हार्‌यो करि जतन विविध विधि
> अतिसय प्रबल अजै।
> तुलसीदास बस होइ तबहिं।
> जब प्रेरक प्रभु बरजै।

माया को समझने के लिए यह जान लेना भी आवश्यक है कि तुलसी ने जिस प्रकार मानस में उसके 'विद्या-माया' और 'अविद्या माया' दो भेद किए हैं, वैसा कोई भेद तो 'विनयपत्रिका' में स्पष्टतः नहीं किया, किन्तु उनकी दृष्टि में सीता 'विद्या-माया' का ही रूप हैं, जो जीव को ब्रह्म में लय कराने वाली हैं। वस्तुतः जगत् की भयकरता एव भ्रमात्मकता का कारण राम की अविद्या माया है, जिसका तुलसी ने विस्तार से विनयपत्रिका में उल्लेख किया है। सीता की तो उन्होंने इस काव्य में भी प्रार्थना ही की है और अपने उद्धार के लिए "कबहुंक अम्ब अवसर पाय" कहकर 'सिफारिश' ही कराई है।

(३) जीव—जगत् और माया-सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझ लेने के पश्चात् तुलसी के जीव-सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझने का क्रम आता है। उन्होंने जहाँ जगत् और माया के सम्बन्ध में शङ्कराचार्य के प्रभाव को स्वीकार किया है, वहाँ जीव के सम्बन्ध में उनकी मान्यता कुछ भिन्न हो गई है। इसका कारण यह है कि शङ्कराचार्य तत्त्व-चिन्तक थे, जबकि तुलसी एक भक्त-कवि हैं। भक्ति के क्षेत्र में जीव और ब्रह्म की द्वैत-भावना आवश्यक होती है। यदि भक्त और भगवान् एक हैं तो फिर मुक्ति कामना किसकी और भक्ति किसकी तथा किसके द्वारा ? वे यह तो मानते हैं कि जीव परमात्मा का ही एक अश है; किन्तु परमात्मा से पृथक् होकर वह माया-जाल में फंस गया है। अत. वह अपने वास्तविक रूप को भी भूल गया है—

> जिव जबतें हरि तें बिलगान्यो।
> तब तें देह गेह निज जान्यो॥
> माया बस स्वरूप बिसरायो।
> तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो॥

माया-वश उसने स्वय को कर्म-जाल में जकड़ दिया है। अतः वह ब्रह्म से . : होकर विवश बना विभिन्न योनियों में भटक रहा है—

ते निज करम-डोरि दृढ़ कीन्हीं।
अपने करनि गाँठि गहि दीन्ही।
ताते परबस भयो अभागे,
ता फल गरभ-बास-दुख आगे।

वस्तुत. जीव का विशुद्ध रूप तुलसी की दृष्टि मे आनन्द-सिन्धु मध्य है—

आनन्द-सिन्धु मध्य तव बासा,
बिनु जाने कस मरसि पियासा ?

जीव को द्वैत का आभास इसलिए होता है, क्योंकि वह जगत् मे आकर विकार-ग्रस्त हो गया है। यदि वह समस्त विकारो का त्याग कर दे तो द्वैत-भावना के भ्रम से मुक्त हो सकता है—

जो निज मन परिहरै विकारा
तो कत द्वैत-जनित ससृति दुख
संसय सोक अपारा ?

वे यह मानते हैं कि जीव को यदि अपने यथार्थ रूप को पहचान कर मुक्ति पानी है तो जगत् के मिथ्यात्व को समझना ही होगा तथा उसे समझ कर उससे सम्बन्ध तोड़ना होगा—

तुलसिदास जग आपु सहित जब लगि निर्मूलन जाई।
तब लगि रचक उपाय करि मरिय तरिय नहिं भाई॥

(४) ईश्वर—जीव का सम्बन्ध जगत् से स्थायी नहीं है, क्योंकि जगत् मिथ्या एवं मायाजन्य है। जीव का स्वरूप भी वह नहीं है, जो जगत् की भ्रांति के कारण प्रतीत होता है। वह वस्तुतः चिदंश है। तब इस चिदंश का अंशी क्या है ? तुलसी का मत है कि वह 'अंशी' निर्गुण तथा सगुण—दोनों रूपों वाला अनादि, अनन्त, अखण्ड तथा अच्युत है। राम को उन्होंने उसी ब्रह्म का लीलावतार माना है तथा लिखा है—

जयति सच्चिद्व्यापकानन्द पर ब्रह्म
विग्रह-व्यक्त लीलावतारी।
विकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध सकोचवश,
विमल गुन-गेह नर-देहधारी।

वे राम ही माया आदि के स्वामी, संसार मे भरण-पोषण-कर्त्ता तथा विश्वकर्त्ता है—

राम-नाम-महिमा करै काम भूरुह आको।
साखी बेद पुरान हैं तुलसी तन ताको ।।

कहने का आशय यह है कि तुलसी ने ईश्वर को अद्वैत तो माना ही है, साथ ही द्वैत भी माना है, क्योंकि उनके राम अज और अखण्ड होते हुए भी अवतार लेते हैं तथा जीव-भिन्न रूप धारण कर अपनी लोक-लीला दिखाते तथा भक्तों के उद्धार में लीन होते हैं।

(५) सिद्धान्त—अब प्रश्न यह उठता है कि वस्तुत. तुलसी के दार्शनिक सिद्धान्त का रूप क्या है। 'विनयपत्रिका' के एक पद मे उन्होने इस सम्बन्ध मे संकेत भी किया है। वे लिखते हैं—

केशव, कहि न जाइ का कहिए।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए ।।
सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न, मरै भीति, दुख, पाइय इहि तनु हेरे ।।
रविकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ।।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै ।।

इससे प्रकट है कि वे शंकर के अद्वैतवाद मे पूर्णतः विश्वास नही करते। उनकी दृष्टि मे उसमे भी भ्रम का अंश है। साथ ही द्वैतवाद को भी वे भ्रमात्मक मानते हैं। उनका मत है कि द्वैताद्वैतवाद भी भ्रमपूर्ण है। अतः वे इन तीनों भ्रमों का परित्याग आवश्यक समझते हैं। ऐसा किए बिना जीव आत्मस्वरूप को नही पहचान सकता। केशव (ब्रह्म) उनकी दृष्टि मे अनिर्वचनीय होने के कारण अद्वैतवादान्तर्गत विवर्तवाद से उनका सिद्धान्त जा मिलता है। किन्तु इतना तो स्पष्ट है ही कि वे अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि के प्रभावों को स्वीकार करते हुए भी इन सबसे भिन्न अपना सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं, जिसे उन्होंने एक दार्शनिक के रूप मे 'विनयपत्रिका' मे स्पष्ट नहीं किया, अपितु एक भक्त के रूप मे ही उसे अपनी अनुभूति मे मिलाकर समस्त पदों मे बिखरा दिया है। हम उनके उस सिद्धान्त को 'भक्तिवाद' के अतिरिक्त और कुछ नहीं कह सकते। तभी तो उन्होंने 'विनयपत्रिका' मे इसी

अन्य वादों का स्थान-स्थान पर प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रूप से विरोध किया है; यथा—

द्वैतवाद का विरोध—

सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत-वियोगी॥

द्वैतवाद, अद्वैतवाद तथा द्वैताद्वैतवाद का विरोध—

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै॥

अद्वैतवाद का विरोध—

जो मुनि ते पुनि आपुहि आपु को ईस कहावत सिद्धि सयाने।

सांख्यवाद का विरोध—

प्रभु गुन सुनि मन हरषि है नीर नयननि ढरिहै।
तुलसिदास भयो राम को बिस्वास प्रेम लखि आनन्द
उमग उर भरिहै॥

इन उदाहरणों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास ने इन सबसे भिन्न अपने भक्तिवाद का प्रतिपादन किया; किन्तु उस भक्तिवाद का रूप क्या है? विनयपत्रिका मे विभिन्न देवी-देवताओ की स्तुति का क्या प्रयोजन है? क्या तुलसी एक ईश्वर के उपासक न होकर विभिन्न देवताओ के उपासक हैं? इन प्रश्नो का उत्तर प्राप्त करना कठिन नही। तुलसी ने प्रत्येक देवता की स्तुति के अन्त मे उससे उसकी भक्ति की याचना नही की, अपितु 'राम' की भक्ति ही माँगी है—

माँगत तुलसिदास कर जोरे।
बसहिं रामसिय मानस मोरे॥

उनके लिए राम के साकार और निराकार रूपो मे कोई अन्तर नहीं है। द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत—हर रूप मे उनके लिए ईश्वर राम मय है।

(६) साधना—तुलसी के दार्शनिक विचारो को सिद्धान्त के रूप मे समझ लेने पर साधना का प्रश्न और शेष रह जाता है। इस सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि उन्होने सासारिक विकारो से रहित होने को साधना का प्रमुख अङ्ग माना है तथा "निरमल निरामय एकरस तेहि हर्ष-सोक न ब्यापही" वाली अवस्था को पहुँचना आवश्यक बतलाया है। यह अवस्था तभी प्राप्त हो

सकती है, जबकि जीव पूर्णतः ब्रह्म (राम) पर आश्रित हो जाय। यह आश्रय-भाव ही तुलसी की वह भक्ति-साधना है, जिसको उन्होंने सर्वसुलभ बतलाया है—

रघुपति भक्ति सुलभ सुखकारी।
सो त्रय-ताप-शोक-भय हारी॥

किन्तु—

बिनु सतसंग भक्ति नहिं होई।

और—

ते तब मिलै द्रवै जब सोई।
जब द्रवै दीनदयालु राघव
साधु संगत पाइए।
जेहि दरस-परस समागमादिक
पाप-रासि नसाइए।
जिनके मिले सुख दुख समान
अमानतादिक गुन भए।
मद लोभ मोह विषाद क्रोध
सुबोध तें सहजहिं गए।

फिर—

सेवत साधु द्वैत भय भागै।
श्री रघुबीर चरन लौ लागै॥

और अन्त में वे यह कह देते हैं—

ग्यान भक्ति साधन अनेक सब सत्य झूठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरि कृपा मिटै भ्रम यह भरोस मन माहीं॥

इस प्रकार तुलसीदास के विचार से हरि की कृपा होने पर अविद्या का नाश होता है, फिर जीव को जिस आत्म-रूप की उपलब्धि होती है वही भक्ति के क्षेत्र में उनकी साधना की चरमावस्था है। भक्ति और भगवान का ऐक्य स्थापित होने पर जीव को और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास ने 'विनयपत्रिका' में अपने दार्शनिक दृष्टिकोण को अत्यन्त स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने विभिन्न सिद्धान्तों का प्रभाव ग्रहण करते हुए भी अपने स्वतन्त्र दृष्टिकोण से माया,

जगत्, जीव, ब्रह्म आदि को समझा है तथा अपना स्वतन्त्र सिद्धान्त प्रतिपादित किया है जिसे 'भक्ति सिद्धान्त' की संज्ञा दी जा सकती है।

प्रश्न ८—भक्तिकालीन जन-जीवन की प्रमुख समस्या क्या थी ? तत्कालीन दार्शनिक प्रवृत्तियों में निहित उस समस्या के विविध समाधानों पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए 'विनय-पत्रिका' में तुलसी द्वारा प्रस्तुत किए गए उनके समाधान पर विचार कीजिए।

उत्तर—तुलसी भक्तिकाल के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं। उनके काव्य में भक्ति की प्रधानता होते हुए भी तत्कालीन जन-जीवन की उपेक्षा नहीं की गई है। वस्तुतः 'स्वान्तः सुखाय' कहकर उन्होने जो कुछ लिखा है, वह 'बहुजन हिताय' हो गया है। उनके युग की जन-जीवन की जितनी समस्याएँ थीं, ध्यानपूर्वक देखने पर हमें उन सबका समाधान उनके काव्य में मिल जाता है। विनयपत्रिका भी इस मत का अपवाद नही है। अतः देखना यह है कि भक्तिकालीन जन-जीवन की प्रधान समस्या क्या थी। तत्कालीन दार्शनिक प्रवृत्तियों मे उसके समाधान को क्या रूप मिला, तथा तुलसी ने अपनी विनय-पत्रिका मे उसका कौन-सा समाधान प्रस्तुत किया।

सबसे पहले स्वाभाविक रूप से भक्तिकालीन जीवन की प्रमुख समस्या को समझने के लिए हमारा ध्यान तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियों की ओर जाता है। हम देखते हैं कि इस काल की परिस्थितियाँ जन-जीवन को प्रबल-झंझावात के समान झकझोर रही थी। राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक किसी भी प्रकार की परिस्थिति ऐसी नही थी जिसमे हमें जन-जीवन के लिए अगणित दुःखो की वृद्धि करने वाले तत्त्व नही मिलते हो। अतः जनता के आत्म-विश्वास को बुरी तरह झकझोरा जा रहा था। सामान्य बुद्धि का मनुष्य जीवन-व्यापी विषमताओ के वास्तविक कारणो की खोज करने मे असमर्थ था। उसे अपने जीवन में सर्वत्र दुःख, क्लेश और सन्ताप दिखाई देते थे। घोर निराशान्धकार उसे बार-बार अपने आलिंगन-पाश मे आबद्ध करने का प्रयत्न करता था। वस्तुतः इस युग के मानव समाज के सामने सबसे भयकर समस्या यह थी कि जागतिक दुःख, संकट, विफलता आदि का कारण क्या है और उससे किस प्रकार मुक्ति प्राप्त की जा सकती है ? इस्लामी शासन विरोध करने पर भी देश में अपनी जड जमा रहा था। राणा प्रताप और उनके साथ मेवाड़ी रक्त की धारा भी इस्लामी प्रभुत्व की बाढ़ को रोकने में समर्थ नहीं

हुई थी। सभी प्रकार के अत्याचार सहते-सहते और उनका विरोध करते-करते जन-जीवन थक चुका था। किसी प्रकार जागतिक दुःखों से मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग सामान्य मनुष्य को नहीं सूझ रहा था।

बुद्ध और महावीर के युग में भी यह समस्या उठी थी, किन्तु इन दोनों मनीषी महात्माओं ने उसके आध्यात्मिक समाधान प्रस्तुत कर शताब्दियों के लिए जनता को मौन कर दिया था। उन्होंने अपने समाधानों में उपनिषदों का प्रभाव स्वीकार करते हुए कर्म-चक्र को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया था। ईसा की नवीं शताब्दी में शंकराचार्य ने उन समाधानों का विरोध करके अपना नया समाधान प्रस्तुत किया था। उन्होंने जगत् को मिथ्या बतलाकर अप्रत्यक्षतः जीव और उसकी दुखानुभूतियों को भी मिथ्या घोषित किया था। किन्तु यह समाधान जनता को अपने भ्रम-जाल में अधिक समय तक नहीं उलझा सकता था, क्योंकि जीवन की कठोर वास्तविकताएँ उनके सामने थीं। रामानुज, निम्बार्क तथा मध्व—इन तीनों आचार्यों ने शंकर के पश्चात् इस दिशा में आध्यात्मिक प्रयत्न किए थे। रामानुजाचार्य ने सूक्ष्म जगत् को एक ईश्वर का अंग मानकर तथा उससे 'चित् (जीव) एवं 'स्थूल अचित' (जगत्) की उत्पत्ति बतलाकर यह प्रतिपादित किया था कि एक ईश्वर ही सर्वोपरि सर्वशक्तिमान तथा समस्त कर्मों का मूलकर्त्ता है। अतः जीव को जगत में प्राप्त होने वाले समस्त दुःखादि का मूल कारण वही है, न कि कोई लौकिक शक्ति। निम्बार्काचार्य ने ईश्वर में चित् के साथ अचित की प्रतिष्ठा करते हुए जीव को अपूर्ण तथा ईश्वराधीन माना है। मध्वाचार्य ने जीव को तीन कोटियों—(१) मुक्ति-योग्य, (२) नित्य संसारी, एवं (३) तमोयोग्य—में विभाजित कर मुक्ति के (१) कर्म-क्षय, (२) उत्क्रान्ति या लय, (३) अचिरादि मार्ग तथा (४) भोग नामक चार भेद किए थे। कर्म-क्षय नाम की मुक्ति में उन्होंने प्रारब्ध कर्म को बिना भोग के नष्ट न होने वाला घोषित किया था।

तात्पर्य यह कि जागतिक दुःखादि की समस्या बौद्ध युग से भक्तिकाल के प्रारम्भ तक किसी-न-किसी रूप में बराबर लोक-कल्याण-चिन्तकों के मस्तिष्क में स्थान पाती आ रही थी तथा इस दीर्घकाल में उसके अनेक समाधान प्रस्तुत किए गए थे; किन्तु वे सब आध्यात्मिक समाधान थे, जिनका मूल-स्वर था—नियतिवाद, अर्थात् वे सभी समाधान किसी-न-किसी रूप में नियति-विश्वासों का पोषण करते आ रहे थे।

तुलसी अपने राम को—जीव को कर्म की प्रेरणा देने वाला, उसके कर्मफल का विधान करने वाला, भाग्य-लेख अंकित करने वाला, भवितव्यता निर्धारित करने वाला तथा अदृश्य रूप से जीवन की समस्त गतिविधि का विधान करने वाला मानते हैं। उन्होंने भक्ति और नियति का समन्वय करके जीवन के जागतिक दुःखों की समस्या का एक सुलझा हुआ तथा सरल समाधान प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि जो कुछ हरि करता है, वही होता है और हरि की कृपा प्राप्त करने के लिए सद्कर्म करना आवश्यक है। कुकर्मों से ईश्वर कभी भी प्रसन्न नहीं हो सकता; किन्तु जिसने जन्मान्तर में कुकर्म अधिक कर डाले हैं, उसे भी भयभीत तथा निराश होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ईश्वर की कृपा होने पर बड़े-बड़े पापों का जाल कट जाता है। इसलिए जागतिक दुःखों को देखकर घबराना नहीं चाहिए। भक्ति द्वारा हरि-कृपा प्राप्त करनी चाहिए। यह हरि-कृपा ही जीव का भाग्य है, क्योंकि उसमें पुरुषार्थ का प्रवेश नहीं। भक्ति में साधना एवं आत्म-दान की प्रधानता होने से पुरुषार्थ की भावना आ सकती है, किन्तु जीवन में भवितव्य घटनाओं को बदला नहीं जा सकता। अतः ईश्वर पर पूर्ण विश्वास करके उसी के आश्रित हो जाने में तुलसी ने समस्त जागतिक दुःखों का समाधान खोज निकाला है। उसकी दृष्टि में जो कुछ ईश्वर की इच्छा है वही होगा, फिर उसके लिए दुखी होने की क्या आवश्यकता है? जीव को स्वयं को भगवान् की शरण में छोड़कर पूर्णतः निश्चिन्त ही रहना चाहिए। फिर जागतिक दुःखों का उसको अनुभव ही नहीं होगा। 'विनयपत्रिका' में भी तुलसी ने अपने युग की पूर्वोक्त मुख्य समस्या का भक्ति की भावभूमि पर यही नियतिवादी समाधान कई पदों में व्यक्त किया है, यथा—

तुलसी जीव के चिरन्तन दुखों का स्मरण करते हुए कहते हैं—

> नाचत ही निसि-दिवस मर्‌यो।
> तब ही तें न भयो हरि! थिर जब तें जिव नाम धर्‌यो॥
> बहु बासना बिबिध कंचुकि, भूषन लोभादि भर्‌यो।
> चर अरु अचर गगन जल थल में, कौन न स्वांग कर्‌यो॥
> देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं, जाँचत कोउ उबर्‌यो।
> मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू तौ न हर्‌यो॥

तुलसी अपने राम को—जीव को कर्म की प्रेरणा देने वाला, उसके कर्मफल का विधान करने वाला, भाग्य-लेख अंकित करने वाला, भवितव्यता निर्धारित करने वाला तथा अदृश्य रूप मे जीवन की समस्त गतिविधि का विधान करने वाला मानते हैं। उन्होंने भक्ति और नियति का समन्वय करके जीवन के जागतिक दुःखों की समस्या का एक सुलझा हुआ तथा सरल समाधान प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि जो कुछ हरि करता है, वही होता है और हरि की कृपा प्राप्त करने के लिए सद्कर्म करना आवश्यक है। कुकर्मों से ईश्वर कभी भी प्रसन्न नहीं हो सकता, किन्तु जिसने जन्मान्तर मे कुकर्म अधिक कर डाले हैं, उसे भी भयभीत तथा निराश होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ईश्वर की कृपा होने पर बड़े-बड़े पापो का जाल कट जाता है। इसलिए जागतिक दुःखों को देखकर घबराना नहीं चाहिए। भक्ति द्वारा हरि-कृपा प्राप्त करनी चाहिए। यह हरि-कृपा ही जीव का भाग्य है, क्योंकि उसमे पुरुषार्थ का प्रवेश नहीं। भक्ति में साधना एव आत्म-दान की प्रधानता होने से पुरुषार्थ की भावना आ सकती है, किन्तु जीवन मे भवितव्य घटनाओ को बदला नहीं जा सकता। अत. ईश्वर पर पूर्ण विश्वास करके उसी के आश्रित हो जाने मे तुलसी ने समस्त जागतिक दुःखो का समाधान खोज निकाला है। उसकी दृष्टि मे जो कुछ ईश्वर की इच्छा है वही होगा, फिर उसके लिए दुखी होने की क्या आवश्यकता है ? जीव को स्वयं को भगवान् की शरण मे छोड़कर पूर्णत: निश्चिन्त हो रहना चाहिए। फिर जागतिक दुःखों का उसको अनुभव ही नहीं होगा। 'विनयपत्रिका' में भी तुलसी ने अपने युग की पूर्वोक्त मुख्य समस्या का भक्ति की भावभूमि पर यही नियतिवादी समाधान कई पदों में व्यक्त किया है; यथा—

तुलसी जीव के चिरन्तन दुखो का स्मरण करते हुए कहते हैं—

> मावत हौं निसि-दिवस मर्यो।
> तब ही तें न भयो हरि ! थिर जब तें जिव नाम धर्यो ॥
> बहु बासना बिबिध कंचुकि, भूषन लोभादि भर्यो।
> चर अरु अचर गगन जल थल में, कौन न स्वाँग कर्यो ॥
> देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं, जाँचत कोउ उबर्यो।
> मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू तौ न हर्यो ॥

इस अनन्त दुःख का समाधान जीव को इसलिए नहीं मिला, क्योंकि रामभक्ति को भूल गया है। तुलसी कहते हैं—

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम-भक्ति-सुरसरिता आस करत ओसकन की॥

सभी दुःखों से निवृत्ति पाने के लिए राम की भक्ति करनी चाहिए। राम-नाम के स्नेह-घन का चातक बन जाना चाहिए—

राम राम रटु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।
रामनाम-नवनेह-मेह को, मन! हठि होहि पपीहा॥

साथ ही उसे अपने कर्मों को सुधारना चाहिए क्योंकि बुरे कर्म करने
ही यह दुःखों के जाल में उलझता है। यदि विधाता विपरीत है, तो वह
की इच्छा करने पर भी दुःख ही पाएगा। जब तक जीव की करनी ठीक
तब तक उसे भयभीत ही रहना पड़ेगा—

निज करनी विपरीत देखि,
मोहिं समुझि महा भय लागै।
जद्यपि मग्न मनोरथ विधि बस,
सुख इच्छत दुख पावै।
चित्रकार कर-हीन जथा,
स्वारथ-बिनु चित्र बनावै।

केवल राम का ही विश्वास दुःखों का नाश कर सकता है—

हृषीकेश सुनि नाऊँ जाऊँ बलि,
अति भरोस जिय मोरे।
तुलसिदास इन्द्रिय संभव दुख,
हरे बनिहि प्रभु तोरे॥

तुलसी कहते हैं कि हे जीव! तुझे सदा कर्मजाल घेरे रहता है; अर्थात् सदा नियति (ईश्वरेच्छा) के वशीभूत हो, कर्मानुसार दुःख पाता रहता किन्तु ईश्वर तेरा साथ इस समय भी नहीं छोड़ता। तेरे कर्मों का तुझे भो कराता हुआ भी वह तेरी रक्षा के लिए तत्पर रहता है। अतः तू उसी की शरण में पहुँचकर अपने दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है—

तू निज करमजाल जहँ घेरो।
श्रीहरि संग तज्यो नहिं तेरो॥

बहु विधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हों ।
परम कृपालु ग्यान तोहि दीन्हों ॥
× × ×
यह जानि तुलसीदास त्रास-हरन
रमापति गाइए ।

तुलसी यह भी जानते हैं कि राम कर्मों के अनुसार ही जीव पर कृपा करते हैं। अतः जन-जीवन-गत दुःखादि की समस्या का अन्त राम-भक्ति द्वारा भी तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि जीव अपने कर्मों को नहीं सुधार लेता। यही तुलसी की वह मान्यता है जिसके अनुसार वे जन-जीवन को सत्कर्मों के पुष्ट आधार पर खड़ा करना चाहते हैं। वे जागतिक जीव को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—

हँनिज करम-डोरि दृढ़ कीन्हीं ।
अपने करनि गाँठि गहि दीन्हीं ॥
ताते परबस पर्यो अभागे ।
ता फल गरभ-बास-दुख आगे ॥

इसीलिए वे राम से विनय करते हैं—

जोनि बहु जन किए करम खल बिबिध बिधि,
अधम आचरन कछु हृदय नहिं धरहुगे ।
दीन हित अजित सरधाय समरथ प्रनतपाल,
चित मृदुल निज गुननि अनुसरहुगे ।

अपने कर्मों का ध्यान एवं राम की भक्ति, जो उपर्युक्त पंक्तियों का सार है, तुलसी के मत से जन-जीवन की भक्तिकालीन जागतिक दुःखादि की सबसे बड़ी उस समस्या का सर्वश्रेष्ठ समाधान था, जिसका समाधान खोजने की महान् चेष्टा तत्कालीन विभिन्न दार्शनिक प्रवृत्तियों में सन्निहित मिलती है।

प्रश्न ६—'विनयपत्रिका' में तुलसी ने राम को किस रूप में चित्रित किया है? सोदाहरण विवेचन कीजिए।

उत्तर—तुलसी ने विनयपत्रिका लिखकर 'राम' से आत्मोद्धार की प्रार्थना की है। एतदर्थ उन्होंने विनय की एक विशेष पद्धति का अनुसरण किया है। अतः राम तक अपनी प्रार्थना पहुँचाने के लिए उन्होंने विभिन्न देवी-देवताओं

की भी स्तुति की है तथा अन्त में वे राम की शरण में स्थिर हो गए हैं। विनय के इस विस्तृत क्षेत्र में उनके राम का रूप भी पूर्णतः प्रकाश में आ गया है। हम उस रूप को विभिन्न देवताओं की स्तुति से लेकर अन्त तक की समस्त विनयावली में अत्यन्त स्पष्ट रूप में सरलतापूर्वक देख और समझ सकते हैं।

सबसे पहले यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि 'विनयपत्रिका' 'श्रीरामचरितमानस' के समान कोई कथा-काव्य नहीं है। अतः उसमे हमें राम का वह रूप नहीं मिलता जो 'श्रीरामचरितमानस' मे मिलता है। 'मानस' में तुलसी ने राम को भगवान का अवतार सिद्ध कर उनके समस्त लौकिक आचरण का चित्रण किया है। अतः उस काव्य मे हम राम के रूप में ईश्वर-रूप की प्रतिष्ठा के साथ-साथ मानव-रूप की प्रतिष्ठा भी पाते हैं। माता-पिता, स्त्री, बन्धु-बान्धव, मित्र-शत्रु आदि के विभिन्न सम्पर्कों में तुलसी ने 'मानस' के राम को रखा है, अतः वे सामान्य मनुष्य की तरह लौकिक दुख-सुख के अनुभवों सहित चित्रित मिलते हैं, परन्तु विनयपत्रिका एक भाव-प्रधान काव्य है। उसमें राम के उस रूप का चित्रण न तो सम्भव ही था और न अपेक्षित ही था। अतः देखना यह है कि उसमें उन्होंने राम को किस रूप में चित्रित किया है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 'विनयपत्रिका' में राम का रूप विभिन्न देवताओं की स्तुतियों एवं आत्मोद्धार के लिए लिखी गई विनयावली मे भली प्रकार समझा जा सकता है। सबसे पहले हमारा ध्यान राम और देवताओं के सम्बन्ध पर जाता है। हम देखते हैं कि तुलसी विभिन्न देवताओं की स्तुति तो करते हैं, किन्तु उनसे याचना 'राम-भक्ति' की ही करते हैं; यथा—

(१) गाइये गनपति जगबंदन।
सकर-सुवन-भवानी - नन्दन॥
× × ×
मांगत तुलसिदास कर जोरे।
बसहिं राम-सिय मानस मोरे॥

(२) देहु काम-रिपु राम-चरन-रति।
तुलसिदास कहँ कृपानिधान॥

(३) दीनदयालु दिवाकर देवा । कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा ॥

× × ×

वेद-पुरान प्रगट जस जागै । तुलसी राम-भक्ति वर मांगै ॥

(४) दुसह दोष-दुख दलनि, करु देवि दाया ।

× × ×

देहि मा, मोहि पन प्रेम यह नेम निज,

राम घनस्याम तुलसी पपीहा ॥

इससे सिद्ध है कि तुलसी ने विनयपत्रिका में राम को सर्वदेवोपरि आध्यात्मिक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है । सभी देवताओं से उन्होंने राम की अधिक महत्त्वपूर्ण सत्ता मानी है; यथा—गंगा की स्तुति में कहा गया है—

विष्णु-पद-सरोज जासि, ईस-सीस पर बिभासि,

त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पाप-छालिका ॥

× × ×

तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुबंस बीर,

बिचरति मति देहि मोह-महिष-कालिका ॥

इस प्रकार तुलसी ने विष्णु के पद-नख से निःसृत होने वाली गंगा से राममक्ति की याचना की है । यहाँ उनका संकेत यही है कि राम उन्हीं विष्णु के अवतार हैं, जिनके पद-नख से गंगा का अवतरण हुआ है । काशी तथा चित्रकूट की भी स्तुति की है । काशी की स्तुति में 'राम नाम' के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए तुलसी ने राम को विश्व का विकासकर्त्ता तथा ब्रह्मस्वरूप बतलाया है—

ब्रह्म जीव सम रामनाम जुग,

आखर बिस्व- बिकासी ।

× × ×

तुलसी बसि हरपुरी राम जपु,

जो भयो चहै सुपासी ॥

चित्रकूट को राम के चरणों से पवित्र बतलाया है । उन्होंने लिखा है कि जानकीनाथ श्रीराम ने इसके प्रभाव को सदा के लिए स्थिर कर दिया है—

भव-घोर घाम-हर सुखद छाँहैं

थप्यो थिर प्रभाव जानकी-नाह ।

इस प्रकार राम का सम्बन्ध चित्रकूट से भी बताया है, किन्तु उनके अवतार से लेकर वहाँ साक्षात् पहुँचने की चर्चा नहीं की है। उन्होंने वस्तुतः राम को सगुण और निर्गुण—दोनों ही रूपों में परमेश्वर माना है। वे देवताओं के भी उपास्य तथा अधिपति हैं, जानकी उनकी शक्ति तथा प्रिया हैं। वे जब जग में अवतार लेते हैं तो उसे पवित्र बना देते हैं। काशी उनके भक्तों की भूमि है तथा गंगा उनके चरणों की पावनता है, जो जलधारा के रूप में जगत को पावन बना रही है। तुलसी ने अवतारी राम के बन्धु—भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न की भी स्तुति की है, किन्तु उनके सम्पर्क में रहकर भी तुलसी ने राम के अवतारी रूप का चित्रण नहीं किया, स्मरण-मात्र किया है। यही बात हनुमान के लिए की गई स्तुति को लेकर भी कही जा सकती है।

वस्तुतः विनयपत्रिका में तुलसी के राम का क्या रूप है, यह और स्तुति प्रसंग में ही विशेष स्पष्ट हुआ है। उन्होंने इस प्रसंग में यह स्पष्ट कर दिया है कि राम 'सच्चिदानन्द', 'परब्रह्म' तथा 'लीलावतारी' हैं—

सच्चिदव्यापकानन्द यह,
ब्रह्म विग्रह-व्यक्त लीलावतारी।

और यह भी बता दिया है कि वे अवतार क्यों लेते हैं—

विकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध संकोचवश,
विमल गुन - गेह नर - देहधारी॥

इस प्रसंग में तुलसी ने रामावतार की अत्यन्त संक्षेप में चर्चा भी कर दी है; यथा—

जयति कोसलाधीस कल्यान कोसल-सुता,
कुसल कैवल्य-फल चारु चारी।
× × ×
जयति रिषि-मख-पाल, समन-सज्जन-साल,
सापबस - मुनिबधू - पापहारी।
भंजि भवचाप, दलि दाप भूपावली,
सहित भृगुनाथ नतमाथ भारी॥
× × ×

चित्रकूटाद्रि विन्ध्याद्रि दंडकविपिन,
धन्यकृत, पुन्यकानन - विहारी ॥

× × - ×

जयति खर-त्रिसिर-दूषन-चतुर्दस-सहस्र-
सुभट - मारीच - संहारकर्ता।
गृध्र-सबरी - भक्ति - बिबस करुना-सिंधु,
चरित निरुपाधि, त्रिबिधार्तिहर्ता ॥
जयति मदअंध कुकबंध बधि,
बालि बलसालि बधि, करन सुग्रीव राजा।
सुभट-मर्कट-भालु-कटक संघट सजत,
नमत पद रावनानुज निवाजा ॥
जयति पाथोधि - कृत - सेतु - कौतुक-हेतु
काल मन अगम लई ललकि लंका।

× × ×

जयति सौमित्रि - सीता - सचिव सहित
चले पुष्पकारूढ़ निज राजधानी।
दास तुलसी मुदित अवधवासी सकल,
राम भे भूप बैदेहि रानी ॥

अवतार की समस्त कथा संक्षेप में कह जाने पर भी इन पंक्तियों में राम का अलौकिक रूप ही प्रधान है, लौकिक लीलाओं का महत्त्व दिखाकर उनकी व्यापक प्रतिष्ठा की गई है। ध्यान देने की बात यह है कि एक ओर तुलसी ने सच्चिदानन्द ब्रह्म बतलाया है, दूसरी ओर उनको लीलावतारी माना है, किन्तु दोनों में उनकी 'राम' सम्बन्धी जो स्थायी धारणाएँ हैं, व्यक्त हुई हैं। यद्यपि कृष्ण भी ब्रह्म के ही लीलावतार हैं, किन्तु तुलसी अपने ब्रह्म—राम—को कृष्ण-रूप में लीलावतारी नहीं दिखाया। एक विशे बात यह और मिलती है कि तुलसी ने हरि और हर—दोनों का अभेद स्थापि किया है तथा राम की स्तुति की है; यथा—

दनुज-बन-दहन, गुन-गहन, गोविन्द, नंदादि-
आनंददाताऽविनाशी ।

संभु सिव रुद्र संकर, भयंकर
भीम, घोर तेजायतन, क्रोध-रासी ॥

× × ×

नीलजलदाभतनु श्याम, बहु काम छवि,
राम राजीवलोचन कृपाला ॥
कंबु - कर्पूर वपुधवल निर्मल
मौलि, सटासुर-तटिनि सित सुमन माला ॥

× × ×

ब्रह्म व्यापक अकल सकल पर, परमहित,
ग्यान - गोतीत गुन - वृत्ति - हर्त्ता ।
सिंधुसुत-गर्व-गिरि-बज्र गौरीस, भव,
दच्छ - मख अखिल - विध्वंसकर्त्ता ।

× × ×

विष्णु - सिव - लोक - सोपान-सम सर्वदा,
वदति तुलसीदास बिसद बानी ।

तुलसी के विष्णु और शिव के अभेद रूप 'राम' उनके हृदय में किस रूप मे विराजमान रहते हैं; यह निम्नांकित पंक्तियों मे द्रष्टव्य है—

जानकीनाथ रघुनाथ रागादि-तम तरनि
तारुण्यतनु, तेजधामं ।
सच्चिदानंद, आनंदकंदाकरं, बिस्व-
बिस्राम रामाभिरामं ।
नीलनव-वारिधर सुभग सुभकांतिकर ।
पीत कौसेय बरवसन-धारी ।
रत्न हाटक जटित मुकुट मंडित मौलि,
भानु-सत-सदृस उद्योतकारी ।
स्रवन कुंडल, भाल तिलक, भ्रूरुचिर अति,
अरुन-अंभोज-लोचन बिसाल ।
बक्र अवलोक, त्रैलोक्य - सोकापहं
मार-रिपु-हृदय - मानस - मराल ॥

नासिका चारु, सुकपोल, द्विज वज्रदुति,
अधर बिम्बोपमा मधुरहासं ।
कंठ दर, चिबुक बर, बचन गंभीरतर,
सत्य संकल्प, सुरत्रास-नासं ॥
सुमन सुविचित्र नवतुलसिकादल-युत
मृदुल बनमाल उर-भ्राजमानं ।

तुलसी ने अपने राम को सन्तों का सन्ताप हरने वाला तथा महाप्रलय के समय सारे विश्व को अपने में विश्राम देने वाला बतलाया है—

सन्त-संतापहर बिस्व-बिस्रामकर,
राम कामारि - अभिरामकारी ।
सुद्धबोधायतन, सच्चिदानंदघन,
सज्जनानन्द - बर्द्धन खरारी ।

तथा लिखा है कि वे राम—

नित्य, निर्मुक्त, संयुक्तगुन, निर्गुनानन्द,
भगवंत नियामक नियंता ॥
बिस्व-पोषन-भरन, बिस्व-कारन-करन,
सरन - तुलसीदास - त्रास - हंता ॥

इन्हीं राम को विचित्र जगत् की रचना करने वाला बताकर तुलसी ने लिखा है—

केसव ! कहि न जाइ का कहिये ।
देखत तव रचना बिचित्र अति ॥
समुझि मनहिं मन रहिये ।
सून्य भीति पर चित्र-रंग नहिं ॥
तनु बिनु लिखा चितेरे ।—आदि

इस प्रकार जगत् का चित्रकार—राम, तुलसी की दृष्टि मे बिना शरीर का है, स्पष्ट है कि तुलसी ने राम के रूप मे 'निराकार' रूप की भी प्रतिष्ठा की है। किन्तु साथ ही यह भी अनेक पदों मे लिखा है कि वे निर्गुण ब्रह्म ही सहृदय बनकर दीनों पर कृपा भी करते हैं। तुलसी की दृष्टि मे 'राम' ऐसी शक्ति हैं, जिनमे दीन का हित करने वाली चरम करुणा सन्निहित है। वे कहते हैं—

ऐसे राम दीन-हितकारी ।
अति कोमल करुनानिधान बिनु कारन परउपकारी ॥

इसीलिए वे अवतार लेते हैं । तुलसी ने अनेक उदाहरण देकर 'राम' के रूप में दीन-वत्सलता का चित्रण किया है—

साधन-हीन दीन निज-अघ-बस,
सिला भई मुनि नारी ।
× × ×
अधम जाति सबरी जोषित जड़....
....सोउ रघुनाथ उधारी ॥

सारांश यह कि विनयपत्रिका में तुलसी ने राम के रूप को अत्यन्त व्यापक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है । उन्होंने राम में सगुण और निर्गुण—दोनों रूपों की तो प्रतिष्ठा की ही है, साथ ही लौकिक एवं अलौकिक—दोनों प्रकार के उनके महान् चरित्र का उन रूपों में उद्घाटन भी किया है । इस प्रकार विनयपत्रिका में तुलसी के राम का रूप पूर्ण ब्रह्मत्व को प्राप्त हुआ है । वह भक्त और ज्ञानी—दोनों के लिए समान रूप से ग्राह्य तथा माननीय है ।

प्रश्न १०—तुलसी के जगत, जीव एवं ब्रह्म-विषयक विचारों को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए ।

उत्तर—प्रश्न ६ का उत्तर दीजिए ।

प्रश्न ११—सिद्ध कीजिए कि विनयपत्रिका यथाक्रम से रचा हुआ विनय का एक महत्त्वपूर्ण काव्य है ।

उत्तर—प्रश्न ५ का उत्तर देखिए ।

प्रश्न १२—सिद्ध कीजिए कि विनयपत्रिका भक्तों के हृदय का सर्वस्व है और भक्ति की पूर्ण पद्धति इसके भीतर दिखाई देती है ।

उत्तर—विनयपत्रिका में तुलसी की भक्ति-भावना का व्यापक रूप में उन्मेष हुआ है । उन्होंने उसमें अपना हृदय खोलकर रख दिया है तथा भक्ति की पूर्ण पद्धति का अनुसरण करते हुए राम से अपने उद्धार की प्रार्थना की है । यही कारण है कि यह ग्रन्थ भक्तों के हृदय का सर्वस्व बन गया है । प्रारम्भ से अन्त तक हम उसमें तुलसी के भक्त-हृदय की अद्भुत तन्मयता के दर्शन करते हैं ।

तुलसी की भक्ति-पद्धति का प्रथम सोपान राम के प्रति अनुराग और जग के प्रति विराग-भाव का जागरण है। भक्त जब संसार से अपने मन को मो कर राम के चरणो मे लीन हो जाता है, तभी वह भक्ति के प्रथम सोपान प चढ़ता है। किन्तु ऐसा कर सकना जीव के लिए सरल नही है। इसीलिए भक तुलसी ने विनयपत्रिका के प्रारम्भ मे 'राम चरन रति' की विभिन्न देवी देवताओं से याचना की है। भक्त के हृदय की राम के प्रति यह रागात्मक ही उसे भक्ति के विशाल क्षेत्र मे प्रवेश करने का अधिकार दिलाने वाली है अतः तुलसी कहते हैं—

मांगत तुलसिदास कर जोरे।
बसहिं राम-सिय मानस मोरे॥

तथा—

बेद-पुरान प्रगट जस जाग।
तुलसी राम-भगति बर मांगं॥

आगे शिवजी से भी उन्होंने ऐसी ही याचना की है—

देहु काम-रिपु, राम-चरन-रति,
तुलसिदास कहँ कृपानिधान॥

जब भक्त को *'राम-चरन-रति'* मिल जाती है, तब वह स्वतः भक्ति आगे के सोपानों पर बढ़ने लगता है। उस समय उसे सासारिक सुखो कामना नहीं रहती। तभी उसे ससार के प्रति विमल वैराग्य प्राप्त हो है। यह वैराग्य ही राम-भक्ति के क्षेत्र का आगे का सोपान है, किन्तु वैराग्य प्राप्त करने के लिए तुलसी को अपने मन को बार-बार प्रबोधन दे पड़ता है—

मन, इतनोई या तन को परम फलु।
सब अंग सुभग बिन्दुमाधव-छबि,
तजि सुभाव, अवलोक एक पलु॥

तथा

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु,
करम, बचन अरु ही ते॥

× × ×

अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़,
त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी
कहुँ, विषय-भोग बहु घी ते ॥

वे आगे कहते हैं—

मन मेरे, मानहि सिख मेरी।
जो निज भक्ति चहै हरि केरी॥
उर आनहि प्रभु-कृत हित जेते।
सेवहि तजे अपनपौ चेते॥
दुख सुख अरु अपमान-बड़ाई।
सब सम लेखहि बिपति बिहाई॥
सुनु सठ काल-ग्रसित यह देही।
जनि तेहि लागि बिदूषहि केही।
तुलसिदास बिनु असि मति आये।
मिलहिं न राम कपट-लौ लाये।

इसीलिए तुलसी यह भी कहते हैं कि मन यदि समझा नहीं, उसमे वैराग्य न नहीं आया तो वह 'राम-चरन-रति' के अभाव मे भक्ति के क्षेत्र में ार नहीं कर सकता। पहले कहा जा चुका है कि भक्ति के दुर्ग पर आरोहण ने के लिए वैराग्य-भाव एक महत्त्वपूर्ण सोपान है। तुलसी वैराग्य के अभाव क्ति का भी अभाव मानते हैं—

मैं जानौ हरिपद-रति नाहीं।
सपनेहुँ नहिं बिराग मन माहीं।
जो रघुबीर-चरन अनुरागे।
तिन्ह सब भोग रोग सम त्यागे॥

'वैराग्य' के पश्चात् तुलसी की भक्ति-पद्धति में 'सन्तोष' का सोपान आता जिसके मनोरथ सन्तोष की सीमा का स्पर्श नहीं करते, वह भक्ति की को किस प्रकार प्राप्त कर सकता है ? विनयपत्रिका मे भी तुलसी ने ि, यह कामना व्यक्त की है—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ-कृपालु कृपा तें सन्त सुभाव गहौंगो।
जथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।

जब जीव इस पथ पर अग्रसर हो जाता है, तभी उसे अविचल हरि-भक्ति की प्राप्ति होती है—

तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि।
अविचल हरि-भक्ति लहौंगो।

भक्त के लिए विनम्र होना भी अत्यन्त आवश्यक है। जब तक 'अहं' भाव शेष रहता है, तब तक भक्ति नहीं की जा सकती। 'विनयपत्रिका' में तुलसी की विनम्रता अत्यन्त विशद् रूप में चित्रित हुई है। उनका दैन्य चरम सीमा को पहुँच गया है। भक्त के हृदय की पूर्णता हमें तुलसी के दैन्य को चित्रित करने वाले पदों में अत्यन्त सरस रूप में दृष्टिगोचर होती है; यथा—

मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई।
हौं तो साईं द्रोही, पै सेवक-हित साईं॥
राम सों बड़ो है कौन, मोसो कौन छोटो।
राम सों खरो है कौन, मोसो कौन खोटो॥
लोक कहै राम को गुलाम हौं कहावों।
एतो बड़ो अपराध भौ, न मन बावों॥
पाथ-माथे चढ़े तृन तुलसी ज्यों नीचे
बोरत न बारि ताहि जानि आपु सींचे॥

इन पंक्तियों में सचमुच भक्त का सच्चा हृदय बोल रहा है। ये पंक्तियाँ विनयपत्रिका को भक्तों के हृदय का सर्वस्व घोषित करती हैं। एक अन्य उदाहरण देखिये, जिसमें भक्त-हृदय की पूर्ण झाँकी मिलती है—

कहाँ जाऊँ, कासों कहौं, को सुनै दीन की।
त्रिभुवन तुही गति सब अंगहीन की॥
जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं।
निराधार के आधार गुनगन तेरे हैं॥
गजराज-काज खगराज तजि धायो को।

मोरो कूर कायर कुपूत कौड़ी आध के।
किये बहुमोल तैं करैया गीध साध के ।।
तुलसी की तेरे ही बनाये, बलि बनैगी।
प्रभु की विलंब-अंब दोष-दुख जनैगी ।।

भक्ति को प्रेमरूपा तथा गोपी नामक दो भेदों में विभाजित किया गया है। गोपी भक्ति को सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी नाम के तीन उपभेदों में विभाजित किया गया है। सात्त्विकी भक्ति में उपासना प्रधान होती है, राजसी-भक्ति मूर्तिपूजा-परक होती है तथा तामसी-भक्ति हिंसा पर आधारित होती है। तुलसी की विनयपत्रिका में प्रेमारूपा भक्ति की तो प्रधानता है ही, साथ ही सात्त्विकी गोपी भक्ति को भी स्थान मिला है। वे कहते हैं—

संजम जप तप नेम धरम व्रत बहु भेषज समुदाई।
तुलसिदास भवरोग रामपद प्रेमहीन नहिं जाई ।।

किन्तु प्रेमरूपा भक्ति भक्त की तीन कोटियों पर आधारित रहती है। भक्त का प्रेम 'गौण', 'मुख्य' और 'अनन्य'—तीन प्रकार का होता है। तुलसी का प्रेम—अनन्य प्रेम है। अतः उनकी भक्ति भी 'अनन्य भक्ति' है। वे स्वयं को चातक और राम को मेघ मानकर भक्ति की तन्मयता प्रदर्शित करते हैं। उन्होने इस तन्मयता के कारण मोक्ष की भी उपेक्षा की है। वे अपनी भक्ति का कोई प्रतिफल नहीं चाहते—

चहौं न सुगति, न सुमति संपति,
कछु रिधि सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग नाथ-पद,
बढ़ौ अनुदिन अधिकाई ।।

तुलसी ने अपनी यह निष्काम भक्ति 'दास्य' और 'आत्मनिवेदन' भावो के साथ व्यक्त की है। भक्त के निर्मल हृदय की झाँकी हमे उनकी इस प्रकार की उक्तियों मे मिलती है; यथा—

(१) नातो नेह नाथ सो करि सब नातो नेत बहै हौं।
यह छर भर ताहि तुलसी जग जाको दास कहैं हौं ।।
(२) यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरे।
तुलसिदास यह विपति बाँगुरो तुमहिं सों बने निबेरे ।।

तुलसी ने नवधा भक्ति की पद्धति का भी अनुसरण विनयपत्रिका में किया है और इस प्रकार भक्त-हृदय की अद्भुत झाँकी प्रस्तुत की है। भगवान् के नाम, रूप और गुणादि का स्मरण करते हुए वे लिखते हैं—

नाथ कृपा ही को पंथ चितवत दीन हौं दिन राति।

भगवान् के चरणों की सेवा का उदाहरण हमे इन पंक्तियों मे मिलता है—

श्री हरि-गुरु-पद-कमल भजहु मन तजि अभिमान।
जेहि सेवत पाइय हरि सुख-निधान भगवान् ॥

भगवान की वन्दना का उदाहरण—

बन्दौ रघुपति करुनानिधान।
जाते छूटै भव भेद-ग्यान ॥

दास्य-भाव का उल्लेख—

नाथ नाइ नाथ सों कहौं, हाथ जोरि खर्‌यो हौं।

तथा आत्म-समर्पण का भाव इन पंक्तियों मे व्यक्त है—

जाउँ कहाँ, ठौर है कहाँ देव ! दुखित दीन को।

इस प्रकार नवधा भक्ति की पद्धति का अनुसरण करते हुए तुलसी भक्ति की उच्चतम अवस्था को पहुँच गए हैं। वे स्वयं को सब प्रकार से पापी और दोषी ठहराते हैं तथा आराध्य की पवित्रता तथा श्रेष्ठता का बार-बार प्रतिपादन करते हैं। वे कहते हैं—

कैसे देउँ नाथहि खोरि।
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि, भगति परिहरि तोरि।

तथा—

है प्रभु मेरोई सब दोसु।
सीलसिंधु, कृपालु, नाथ अनाथ, आरत-पोसु ॥

उन्होंने यहाँ तक कह दिया है—

प्रभु की बड़ाई बड़ी आपनी छोटाई छोटी,
प्रभु की पुनीतता आपनी पाप-पीनता।

वे अपने मुख से किसी अन्य का नाम उच्चरित नहीं करना चाहते। वे राम के सिवाय अन्य किसी के नहीं हैं। अतः कहते हैं—

गरैगी जीह जो कहौं और को हौं।
जानकी जीवन ! जनम जग ज्यायो
तिहारेहि कौर को हौं।

उन्हें राम के अतिरिक्त किसी का भरोसा नहीं है—

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो।
करम, उपासन, ग्यान, वेदमत सो सब भाँति खरो॥

भक्त की राम के प्रति यह अटूट आसक्ति विनयपत्रिका की भक्ति की श्रेष्ठता को व्यंजित करती है—

राम रावरो नाम मेरो मातु पितु है।
सुजन सनेही गुरु साहिब सखा सुहृद
राम नाम प्रेम मन अविचल वितु है।

सारांश यह कि विनयपत्रिका में भक्ति की पूर्ण पद्धति दिखाई देती है। उसमें तुलसी ने अपनी अनन्यता का चित्रण करके उसे भक्तों के हृदय का सर्वस्व बना दिया है।

प्रश्न ११—"विनयपत्रिका में तुलसी के दैन्य-भाव की अत्यन्त विशद अभिव्यक्ति मिलती है।" इस कथन पर विस्तार से विचार कीजिए।

उत्तर—'विनयपत्रिका' एक विनय-प्रधान काव्य है। अतः उसमें दैन्य-भाव की अभिव्यक्ति स्वाभाविक है। तुलसी की भक्ति 'अनन्य भाव' की कोटि में आती है। वे रामरूपी घन के प्रेम में दिन-रात रट लगाने वाले भक्त-चातक हैं—'राम नाम-नव-मेह को मन ! हठि होहि पपीहा।' अतः वे अपने आराध्य से अपनी कोई भी दुर्बलता नहीं छिपाना चाहते। उनकी भक्ति दास्य-भाव के अन्तर्गत मानी जाती है। दास अपने प्रभु से सब प्रकार छोटा होता है। तुलसी भी राम की शरण में अपनी दीनता के कारण ही गए हैं। संसार में उन्हें अपना कोई दिखाई नहीं दिया। अत. उन्होंने सभी देवताओं से भगवान् राम की शरण की याचना की है। उनकी इस याचना तथा भक्ति में उनके हृदय का दैन्य-भाव अत्यन्त विशद रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

तुलसीदास 'मूढ भिखारी' बनकर राम के देव-दरबार में पहुँचते हैं। वे हर एक देवता के आगे दीन बनकर राम-भक्ति की याचना करते हैं। जिस

देवता के सामने पहुँचते हैं, उसी को दीनों पर कृपा करने वाला बताकर उससे 'राम-चरन-रति' माँगते हैं; यथा—शिवजी की स्तुति करते हुए वे कहते हैं—

को जाँचिए संभु तजि आन।
दीनदयालु भक्त-आरति-हर सब प्रकार समरथ भगवान॥

× × ×

देहु काम-रिपु राम-चरन रति तुलसिदास कहँ कृपानिधान॥

× × ×

दानी कहुँ संकर-सम नाहीं।
दीनदयालु दिबोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं॥

× × ×

तुलसिदास से मूढ़ माँगने, कबहुँ न पेट अघाहीं॥

माता सीता को अपनी दीनता बतलाते हुए वे उनसे राम को अपना स्मरण करा देने की प्रार्थना करते हैं—

दीन सब अंगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ॥

उन्हें राम के सिवाय अन्य किसी का भरोसा नहीं है। वे इतने अधिक दीन-दुखी हैं कि कोई अन्य उनकी पीड़ा को दूर नहीं कर सकता—

दूसरो भरोसो नाहिं, बासना उपासना को
बासव बिरंचि सुर-नर मुनिगन को।
स्वारथ के साथी, मेरे, हाथी स्वान लेवा देई
काहू तो न पीर रघुबीर! दीन जनकी।

वे अत्यन्त दैन्य-भाव के साथ राम से प्रार्थना करते हैं—

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ।

× × ×

तू गरीब को निवाज, हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपालु! तुलसिदास मेरो॥

निम्नलिखित पंक्तियों में तुलसी का दैन्य-भाव अत्यन्त निर्मल रूप में अभिव्यक्त हुआ है। वे कहते हैं—

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो?
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो॥

अपनी दीन दशा का भली प्रकार अनुभव करके ही तुलसी राम के भवन-द्वार पर जा पड़े हैं। वे कहते हैं—

नाचत ही निसिदिवस मर्‍यो।

× × ×

तुलसिदास निज भवन-द्वार प्रभु, दीजै रहन पर्‍यो॥

अपनी हीनता और मलीनता का परिचय देते हुए वे कहते हैं—

माधव, मो समान जग माहीं।
सब विधि हीन, मलीन, दीन अति, लीन-बिषय कोउ नाहीं॥

× × ×

ताहि ते आयो सरन सबेरे।
ग्यान बिराग भगति साधन कछु सपनेहुँ नाथ न मेरे॥
लोभ-मोह-मद-काम-क्रोध रिपु फिरत रैनि दिन घेरे।
तिनहिं मिले मन भयो कुपथ-रत फिरै तिहारेहि फेरे॥
दोष-निलय यह विषय सोक-प्रद कहत संत स्रुति टेरे।

× × ×

तुलसिदास यह बिपति बाँगुरो तुमहिं सों बनै निबेरे॥

तुलसीदास को अपने पापों का स्मरण करके अत्यधिक दीनता का अनुभ होता है—

नाथ सों कौन बिनती कहि सुनावौं।
त्रिबिध अनगिनत अवलोकि अघ आपने,
सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावौं॥

वे राम के द्वार पर पड़े-पड़े अपनी दीनता का अनुभव करके कहते हैं—

द्वार हौं भोर ही को आज।
रटत रिरिहा आरि और न कौर ही तें काज।

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ?
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो ॥

अपनी दीन दशा का भली प्रकार अनुभव करके ही तुलसी राम के भवन-द्वार पर जा पड़े हैं । वे कहते हैं—

माधव हौ निसिदिवस मर्यो ।
× × ×
तुलसिदास निज भवन-द्वार प्रभु, दीजै रहन पर्यो ॥

अपनी हीनता और मलीनता का परिचय देते हुए वे कहते हैं—

माधव, मो समान जग माहीं ।
सब विधि हीन, मलीन, दीन अति, लीन-विषय कोउ नाहीं ॥
× × ×
ताँहि ते आयो सरन सबेरे ।
ग्यान बिराग भगति साधन कछु सपनेहुँ नाथ न मेरे ॥
लोभ-मोह-मद-काम-क्रोध रिपु फिरत रैनि दिन घेरे ।
तिनहिं मिले मन भयो कुपथ-रत फिरै तिहारेहि फेरे ॥
दोष-निलय यह विषय सोक-प्रद कहत संत स्रुति टेरे ।
× × ×
तुलसिदास यह बिपति बाँगुरो तुमहिं सों बनै निबेरे ॥

तुलसीदास को अपने पापों का स्मरण करके अत्यधिक दीनता का अनुभव होता है—

नाथ सों कौन बिनती कहि सुनावौं ।
त्रिबिध अनगिनत अवलोकि अघ आपने,
सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावौं ॥

वे राम के द्वार पर पड़े-पड़े अपनी दीनता का अनुभव करके कहते हैं—

द्वार हौं भोर हो को आज ।
रटत रिरिहा आरि और न कौर ही तें काज ।

कलि कराल दुकाल दारुन सब कुभाँति कुसाज।
नीच जन, मन ऊँच, जैसी कोढ़ि में की खाज॥
× × ×
जनम को भूखो भिखारी हौं गरीब निवाज।
पेट भरि तुलसिहि जेंवाइय भगति-सुधा सुनाज॥

वे दिन-रात दीन बनकर 'दीनदयाल' की कृपा का पथ निहारते रहते हैं—

नाथ, कृपा ही को पंथ चितवत,
दीन हौं दिन-राति।
होइ धौं केहि काल दीनदयालु,
जानि न जाति॥

वे राम के अतिरिक्त अन्य किसको अपनी दीनता सुनाएँ ? राम के समान दीनदयालु अन्य कोई नहीं—

दीनबन्धु दूसरो कहँ पावों ?
को तुम बिनु पर-पीर पाइहै ? केहि दीनता सुनावों॥
× × ×
अति लालची काम-किंकर मन, मुख रावरो कहावों।
तुलसी प्रभु जिय की जानत सब, अपनो कछुक जनावों॥

तुलसी अपने समान अन्य किसी को दीन नहीं मानते, इसीलिए वे राम की शरण में गए हैं—

तुम सम दीनबन्धु न दीन कोउ मो सम,
सुनहु नृपति रघुराई।
मो सम कुटिल-मौलमनि नहिं, जग,
तुम सम हरि न हरन कुटिलाई॥
हौं मन बचन करम पातक रत,
तुम कृपालु पतितन-गतिदाई।
हौं अनाथ प्रभु, तुम अनाथ-हित,
चित यहि सुरति कबहुँ नहिं आई॥
हौं आरत, आरति-नासक तुम,
कीरति निगम पुरानन गाई।

हौं सभीत तुम हरन सकल भय,
कारन कवन कृपा बिसराई ।।
तुम सुखधाम राम स्रम-भंजन,
हौं अति दुखित त्रिबिधि स्रम पाई ।
यह जिय जानि दास 'तुलसी कहें,
राखहु सरन समुझि प्रभुताई ।।

तुलसी कहते हैं कि मैं इतना अधिक दीन हूँ कि मुझसे अपनी दीनता ी भी नही जाती। किन्तु राम से उसे कह डालने में भी मुझे सुखानुभव ा है—

कह्यो न परत, बिनु कहे न रह्यो परत,
बड़ो सुख कहत बड़े सों, बलि दीनता ।
प्रभु की बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी,
प्रभु की पुनीतता आपनो आप पीनता ।।

इसीलिए वे कहते हैं कि—

जैसो हौं तैसो राम रावरो जन, जनि परिहरिये,
कृपा-सिंधु, कोसल धनी !
सरनागत-पालक हरनि आपनी हरिए ।
× × ×
अपराधी तऊ आपनो, तुलसी न बिसरिये ।
टूटियो बाँह गरे परै, फूटेहू बिलोचन
पीर होत हित करिये ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी ने विनयपत्रिका में अपना दैन्य-भाव म सीमा को पहुँचा दिया है। उन्होंने भक्ति-भाव के साथ अपनी दीनता अत्यन्त विशद् चित्रण करके राम को लुभाया है।

प्रश्न १४—"विनयपत्रिका की भावाभिव्यक्ति पर तुलसी की अन्य कृतियों अभिव्यक्त भावों का पर्याप्त प्रभाव पाया जाता है।" इस कथन की सत्यता सोदाहरण विचार कीजिए।

उत्तर—'विनयपत्रिका' तुलसी की वृद्धावस्था की कृति है। अतः इस ते में उनके हृदय ने मानो अपने भावों का सर्वेक्षण प्रस्तुत करते हुए ईश्वर-

भक्ति के गहन-गम्भीर सागर में अवगाहन किया है। इस सर्वेक्षण मे उनकी अन्य कृतियों के भाव भी विभिन्न रूपों मे उनकी विनयावली मे स्थान पा गए हैं। 'श्रीरामचरितमानस' से लेकर 'बरवै रामायण' प्रभृति सभी कृतियो की भावाभिव्यक्ति का प्रभाव 'विनयपत्रिका' के भावों पर कहीं प्रत्यक्ष रूप मे और कहीं अप्रत्यक्ष रूप मे अधिकांश स्थलो पर पाया जाता है। 'श्रीरामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड मे उन्होने जिस मनोवृत्ति का परिचय दिया है, वह 'कवितावली' के उत्तरखण्ड मे भी व्यक्त हुई है और 'विनयपत्रिका' मे भी चरम विस्तार को प्राप्त हो उठी है। इस प्रवृत्ति के साथ उनके अनेक भाव ऐसे व्यक्त हुए हैं, जिन पर उनकी पूर्ववर्ती रचनाओ का पर्याप्त प्रभाव पाया जाता है।

'विनयपत्रिका' का प्रधान विषय 'भक्ति' है। 'कवितावली' मे तुलसी ने स्वय को राम की शरण मे पहुंचा कर सन्तोष लाभ किया था। उस काव्य मे वह 'राम' पर गर्व करते तथा एकमात्र उन्हे ही अपना सर्वस्व मानते मिलते हैं—

राचरो कहावौं, गुन गावौं राम रावरेई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि हौं।
जानत जहान, मन मेरे हू गुमान बड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत न मानि हौं॥

और विनयपत्रिका मे भी वे इसी भाव को दूसरे शब्दों मे यो व्यक्त करते हैं—

राम राखिए सरन, राखि आए सब दिन,
विदित त्रिलोक तिहुँ काल न दयालु दूजो।

वे 'कवितावली' मे अपने उन राम पर पूर्ण विश्वास करके निर्भय दिखाई देते हैं—

कौन की त्रास करै तुलसी,
जो पै राखि हैं राम तो मारिहै को रे।

और 'विनयपत्रिका' मे भी वे यही घोषणा इस प्रकार करते मिलते हैं—

तुलसीदास रघुबीर बाहुबल,
सदा अभय काहू न डरै।

'कवितावली' मे वे स्वय को अत्यन्त निम्नकोटि का बतलाकर अपने प्रभु का गौरव व्यक्त करते हैं—

हौं तो सदा खर को असवार,
तिहारोइ नाम गयन्द चढ़ायो।

और 'विनयपत्रिका' में भी वे अपनी हीनता तथा राम की महत्ता उसी प्रकार व्यक्त करते हुए कहते हैं—

राम सो बड़ो है कौन, मो सो कौन छोटो?
राम सो खरो है कौन, मो सो कौन खोटो?

'विनयपत्रिका' में तुलसी ने राम के नाम की महत्ता भी बड़े विस्तार से बखान की है, जिसका भाव-साम्य हमें 'कवितावली' में ही नहीं, अन्य कृतियों में भी मिलता है; यथा—'विनयपत्रिका' में वे कहते हैं—

राम तें अधिक नाम करतब जेहि किए नगर-गत गामो।
भए बजाइ दाहिने जो जपि तुलसीदास से बामो॥

और 'कवितावली' में यही भाव यों मिलता है—

राम नाम को प्रभाव, पाव महिमा प्रताप,
तुलसी से जग मनियत महामुनी हो।
अति हो अभागो अनुराग तन राम-पद,
मूढ़ एतो बड़ो अचरजु देखि सुनी को।

तथा 'बरवै रामायण' में—

राम जपत भए तुलसी तुलसीदास।

कहकर 'श्रीरामचरितमानस' में राम के नाम को कलियुग के समस्त पापों का नाशकर्ता बताया गया है। तुलसी कहते हैं—

'नाम सकल कलि कलुष निकन्दन।'

'दोहावली' में उन्होंने लिखा है—

प्रीति प्रतीति सुरीति सों राम नाम जपु राम।
तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य परिनाम॥

राम की भक्ति में उन्होंने अपने मन को उसी प्रकार लीन किया है, जिस प्रकार मीन जल में लीन रहती है। उनकी भक्ति-सम्बन्धी यह धारणा विनयपत्रिका में जिस रूप में मिलती है, उसी रूप में उनकी अन्य कृतियों में भी ई जाती है; यथा—

विनयपत्रिका में—सीतापति भक्ति सुरसरि-मन-मीनता।

दोहावली में—सुगम प्रीति प्रीतम सबै, कहत करत सब कोइ।
तुलसी मीन पुनीत ते, त्रिभुवन बड़ो न कोइ ॥

श्रीरामचरितमानस में—राम भगति जल मम मन मीना।
किमि बिलगाइ मुनीश प्रवीना ॥

तुलसी ने राम के आगे अपनी दीनता दिखाते हुए जो भाव विनयपत्रिका मे व्यक्त किए हैं, उन पर भी उनकी अन्य कृतियों मे व्यक्त भावो का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है; यथा—'बरवै रामायण' मे वे लिखते हैं—

केहि गिनती महँ, गिनती जस बन घास।
नाम जपत भए तुलसी, तुलसीदास ॥

यही बात 'कवितावली' मे यों कहते हैं—

साहिब सुजान जिस स्वानहू को पच्छ कियो,
रामबोला नाम, हौं गुलाम राम साहि को।

और 'विनयपत्रिका' मे इन्ही पंक्तियो से प्रभावित पंक्तियाँ इस प्रकार मिलती हैं—

राम को गुलाम रामबोला राख्यो राम,
काम यहै नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं।

वे जगत मे किस प्रकार पेट के लिए दर-दर ठोकरें खाते फिरते रहे, इस तथ्य को उन्होंने जिस प्रकार 'कवितावली' में व्यक्त किया है, उसी भाव के साथ 'विनयपत्रिका' मे भी, यथा—'कवितावली' मे वे लिखते हैं—

जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस,
खाए टूक सबके विदित बात दुनी सो।

और 'विनयपत्रिका' मे इसी भाव को यो व्यक्त करते हैं—

फिर्‌यौ ललात बिनु नाम उदर लगि,
दुखए दुखित मोहि हेरे।

अपने जीवन पर प्रकाश डालने वाली कई बातें उन्होने अपनी कृतियों में समान रूप से लिखी हैं; यथा—जाति के सम्बन्ध मे वे विनयपत्रिका मे लिखते हैं—

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर,
हेतु जो फल चारि को।

'कवितावली' में कहते हैं—

भक्ति भारत भूमि भले कुल जन्मि,
समाज सरीर भलो लहिकै।

विवाह के सम्बन्ध में 'कवितावली' में ये पंक्तियां मिलती हैं—

काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब,
काहू की जाति बिगार न सोऊ।

और 'विनयपत्रिका' में यही बात यों कही गई है—

मेरे ब्याह न बरेखी, जाति-पाँति न चहत हौं।

काशी की पावन-भूमि में साधना का जो आकर्षण तुलसी को दिखाई दिया है, वह उन्होंने 'मानस' मे इस प्रकार व्यक्त किया है—

जहँ बसि संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न ?

और 'विनयपत्रिका' मे भी यही बात कुछ शब्दान्तर के साथ यों दुहराई गई है—

सेइय सहित सनेह देहभरि, कामधेनु कलि कासी।

'कवितावली' में उन्होने अपने चित्त को चित्रकूट ले जाने की जो चेष्टा इन शब्दों मे व्यक्त की है—

तै सेइय सनेह सों बिचित्र चित्रकूट सो।

वही भाव विनयपत्रिका में यों व्यक्त हुआ है—

अब चित्त चेतु चित्रकूटहि चलु।

'श्रीरामचरितमानस' मे जिन देवताओं की स्तुति उनके चरित्र की अभिव्यक्ति करके की गई है, अथवा 'कवितावली' मे देवताओं का गुण-गान मुक्त छन्दों मे यत्र-तत्र किया गया है, उन्हीं को 'विनयपत्रिका' मे तुलसी ने अपने जीवन का सहायक मानकर स्तुति का पात्र बनाया है। राम के जिस रूप की कल्पना उन्होने अपनी अन्य कृतियों मे जिस भाव से की है, उसी भाव से कुछ अधिक गहराई के साथ विनयपत्रिका मे की है। जीव, जगत्, माया—आदि के सम्बन्ध में भी उनके भाव प्रायः सभी कृतियो में सादृश्य रखते हैं। विनयपत्रिका में उन्होंने जगत को मिथ्या लिखा है—

तुलसी जागे ते जाय ताप तिहूँ ताय रे।
राम नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे॥

ये पंक्तियाँ 'श्रीरामचरितमानस' की इन पंक्तियों से भाव-सादृश्य रखती हैं—

झूठहु सत्य जाहि बिनु जानें। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागें जथा सपन-भ्रम जाई॥

तुलसी ने बार-बार राम को माया का स्वामी घोषित किया है। 'श्रीरामचरितमानस' में वे लिखते हैं—

अस जिय जानि भजहिं मुनि मायापति भगवान।

और 'विनयपत्रिका' में इसी भाव को किंचित् अन्तर के साथ यों व्यक्त करते हैं—

हौं जड़ जीव, ईस रघुराया।
तुम मायापति, हौं बस माया॥

'श्रीरामचरितमानस' में प्रभु को माया का प्रेरक माना गया है—

एक रचइ जग गुन बस जाकें।
प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें॥

'विनयपत्रिका' में इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है—

तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै।

भाव-सम्बन्धी इस आन्तरिक समानता के अतिरिक्त तुलसी ने अपने युग की बाह्य बातों को भी प्रायः विनयपत्रिका में अन्य कृतियों के सादृश्य के आधार पर ही रखा है; यथा—मानस में अपने युग के समाज के विषय में वे लिखते हैं—

बरन धरम नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥

और यही बात 'विनयपत्रिका' में यों लिखते हैं—

आश्रम बरन धरम बिरहित जग लोक-बेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पाप-रत अपने-अपने रंग रई है॥

राज-सभा के विषय में 'दोहावली' में लिखा है—

गोंड़ गँवार नृपाल महि, यवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल॥

यही भाव 'विनयपत्रिका' में यों व्यक्त हुआ है—

राज-समाज कुसाज कोटि कटु कलपत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमित पति हेतुवाद हठि हेरि हई है॥

सारांश यह है कि 'विनयपत्रिका' की भावाभिव्यक्ति पर तुलसी की अन्य कृतियों में अभिव्यक्त भावों का पर्याप्त प्रभाव पाया जाता है। मानस, कवितावली, दोहावली, बरवै-रामायण आदि में उन्होंने जीव, जगत्, ईश्वर, भक्ति आदि के विषय में तथा अपने एवं समाज के विषय में जो भाव व्यक्त किए हैं, उनमें तथा 'विनयपत्रिका' में व्यक्त भावों में पर्याप्त साम्य उपलब्ध होता है।

प्रश्न १५—'विनयपत्रिका' के भाव-सौन्दर्य की विस्तार से सोदाहरण समीक्षा कीजिए।

उत्तर—भक्त-कवि होने के कारण तुलसी के काव्य में भावुकता का प्राधान्य है। उनकी सभी कृतियों में काव्यगत भाव-सौन्दर्य अत्यन्त उत्कृष्ट रूप में अभिव्यक्त मिलता है। विनयपत्रिका उन्होंने भक्ति-भाव में विभोर होकर लिखी है। अतः भक्ति सम्बन्धी विभिन्न भावों की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति हमें इस काव्य में मिलती है। वस्तुत. हृदय की अत्यन्त निर्मल तथा सहज सौन्दर्य सृष्टि का दर्शन इस काव्य में होता है। तुलसी की प्रार्थना जिस क्रम से भगवान् राम तक पहुँचती है, उस क्रम के साथ भक्त-हृदय की विभिन्न दशाओं का उन्होंने चित्रण कर दिया है। तत्पश्चात् राम की शरण में पहुँच कर उनकी भाव-धारा उन्मुक्त क्षेत्र में बह निकली है। यहाँ पर्याप्त उद्धरण देकर हम विनयपत्रिका की भाव-निधि के उस अद्भुत सौन्दर्य का उद्घाटन करने की चेष्टा करेंगे, जिसके कारण यह काव्य भक्त-रसिकों का कण्ठहार बना हुआ है।

तुलसी ने राम-भक्ति की याचना करते हुए गणेशजी की स्तुति के पश्चात् शिवजी की स्तुति अत्यन्त भाव-विभोर होकर की है। उनकी दानशीलता का वर्णन करने के लिए उन्होंने अत्यन्त सरस कल्पना निम्नांकित छन्द में की है। ब्रह्मा जीवों के भाग्य-विधाता हैं। शिवजी भोले दानी हैं। वे हर एक पर सरलता से प्रसन्न हो जाते हैं और यथावांछित फल दे डालते हैं। ब्रह्मा को इससे बड़ी कठिनाई होती है, क्योंकि वे एक बार जो भाग्य निर्धारित कर देते हैं, उसे शिवजी की दानशीलता के कारण ही शीघ्र बदलना पड़ता है। देखिए, कैसी सरस भाव-व्यंजना है, इस पद में—

> बावरो रावरो नाह भवानी।
> दानि बड़ो, दिन देत, दए बिनु बेद-बड़ाई भानी॥

निज घर की बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी ।
सिव की दई सम्पदा देखत, श्री-सारदा सिहानी ।।
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहिं निसानी ।
तिन रंकन को नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी ।।
दुखी दीनता दुखियन के दुख, जाचकता अकुलानी ।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी ।।
प्रेम-प्रसंसा-बिनय-ब्यंगजुत, सुनि बिधि की बरबानी ।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत-मातु मुसुकानी ।।

प्रेम, प्रशंसा, विनय, व्यंग्य, मोद आदि की एक साथ कैसी सरस व्यंजना इन पंक्तियों में की है ! महेश के उल्लास एवं पार्वती की मुस्कान का कैसा नाटकीय भाव-चित्र इन पंक्तियों में उपस्थित हुआ है ! अब सीता के प्रति की गई एक स्तुति मे भी भावाभिव्यक्ति का अद्भुत सौन्दर्य देखिए । तुलसी राम के पास तक अपनी विनयपत्रिका पहुँचाना चाहते हैं । उन्हें उसे केवल पहुँचाना ही नहीं है, अपितु स्वीकृत कराने के लिए सिफारिश भी करवानी है । अतः वे उसे राम तक ऐसे समय पहुँचाना चाहते हैं, जबकि उनका चित्त प्रसन्न हो— हृदय में किसी की करुण-दशा को सुनने की भावुकता हो । तुलसी सीता के पास पहुँचते हैं और उनको 'माँ' कहकर सम्बोधित करते हैं, ताकि उन्हें सीता का वात्सल्य भाव प्राप्त हो सके । फिर वे उनसे अपनी विनयपत्रिका राम तक पहुँचाने का निवेदन करते हैं । इस निवेदन की प्रत्येक पंक्ति तुलसी ने भाव-सिन्धु में डूब कर लिखी है । वे कहते हैं कि—हे माता ! कभी, जब तुम्हें अवसर मिल जाय तब, राम को मेरी भी सुधि दिला देना । लेकिन उसके साथ वे एक शर्त भी रख देते हैं—वह यह कि उनकी सुधि दिलाने से पूर्व सीता राम के सम्मुख कोई अन्य करुण प्रसङ्ग अवश्य उपस्थित कर दें, ताकि तुलसी की करुण-कहानी सुनने के लिए अपेक्षित मनोदशा को राम पहले से प्राप्त कर लें । अब तुलसी के ही शब्दों मे उनकी भावाभिव्यक्ति का सौन्दर्य परखिए । वे कहते हैं—

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन कथा चलाइ ।।
दीन सब अगहीन छीन मलीन अघी अघाइ ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ ।।

सूभि है 'सु है कौन', कहिबी नाम दसा जनाइ ।
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ ॥
जानकी जगजननि जन की किये बचन सहाइ ।
तरै तुलसीदास भव, तव-नाथ-गुनगान गाइ ॥

इन पंक्तियों में तुलसी के हृदय के भाव जिस सौन्दर्य के साथ व्यक्त हुए हैं वह सौन्दर्य बहुत कम काव्यों में मिलेगा। अनुभूति की सचाई के साथ-साथ अभिव्यक्ति की सचाई भी काव्य में सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिए अपेक्षित होती है, जो इस पद में द्रष्टव्य है। काव्यगत भाव-सौन्दर्य की उत्कृष्टता इसी बात में है कि उसमें हृदय को निश्छल भाव से यथार्थ रूप में उन्मुक्त कर दिया जाय। तुलसी ने इस पद में वही किया है।

अपने आराध्य भक्तोद्धारक भगवान् राम की शरण में पहुँचकर वे कितनी भावुकता के साथ सरल हृदय से विनय करते हैं—

मैं हरि, पतित-पावन सुने।
मैं पतित तुम पतित-पावन, दोउ बानक बने ॥
ब्याध गनिका गज अजामिल, साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे, जात कापै गने ॥
जानि नाम अजानि लीन्हे, नरक जमपुर मने।
दास तुलसी सरन आयो, राखिये अपने ॥

और फिर उनकी भावुकता यहाँ तक बढ़ जाती है कि वे संसार में बि सेवा के द्रवित होने वाला किसी अन्य को न पाकर कह उठते हैं—

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोऊ नाहीं ॥
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ॥
जो संपति दस सीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच-सहित हरि दीन्हीं ॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ॥

और फिर उनकी भाव-प्रवणता इस सीमा तक पहुँच जाती है—

कबहुँक हौं यह रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु कृपा तें संत सुभाव गहौंगो ॥
जथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरन्तर मन-क्रम-बचन नेम निबहौंगो ॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि, तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, नहिं दोष कहौंगो ॥
परिहरि देह-जनित-चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि भक्ति लहौंगो ॥

अभिलाषा का कितना निर्मल तथा निश्छल भाव इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है ! इस उदाहरण से तुलसी के भावुक हृदय की कोमलता का सहज में अनुमान लगाया जा सकता है।

विनयपत्रिका के भाव सौन्दर्य की सरस अभिव्यक्ति प्रस्तुत करने वाला एक अन्य उदाहरण लीजिए। राम को अपनी विनय सुनाते हुए तुलसीदास कहते हैं—

नाथ, गुननाथ सुनि होत चित चाउ सो।
राम रीझिबे को जानो भगति न भाउ सो ॥
करम सुभाउ काल ठाकुर न ठाउँ सो।
सुधन न सुतन न सुम न सुझाउ सो ॥
जाँचो जल जाहि कहै अमिय पिआउ सो।
कासों कहौं काहू सों न बढ़त हिआउ सो ॥
बाप, बलि जाउँ, आप करिये उपाउ सो।
तेरेही निहारे परै हारेहू सुदाउ सो ॥
तेरेही सुझाये सूझै असुझ सुझाउ सो।
तेरेही बुझाये बूझै अबुझ बुझाउ सो ॥
नाम-अवलम्ब-अंबु दीन मीन राउ सो।
प्रभु सों बनाइ कहौं जीह जरि जाउ सो ॥
सब भाँति बिगरी है एक सुबनाउ सो।
तुलसी सुसाहिबहिं दियो है जनाउ सो ॥

चित्त की कैसी निर्मल भाव-दशा तुलसी की इन पंक्तियों में मिलती है। विनयपत्रिका के भाव-भण्डार की ऐसी उक्तियाँ ही अमूल्य निधियाँ हैं। मन को

सचेत करने के लिए व्यक्त किए गए भावों में से भी अब कुछ बानगी लीजिए। तुलसी कहते हैं—

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अरु ही ते॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप, बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते॥
सुत बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते।
अतहुँ तोहि तजैंगे पामर! तू न तजै अबही ते॥
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ, विषय-भोग बहु घी ते॥

अपने आराध्य से कृपा-याचना करते हुए उन्होंने इन पंक्तियों में अपना हृदय ही खोल कर रख दिया है—

कबहुँ कृपा करि रघुबीर! मोहूँ चितैहो।
भलो बुरो जन आपनो जिय जानि दयानिधि!
अवगुन अमित बितैहो॥
जनम-जनम हौं मन जित्यो, अब मोहिं जितैहो।
हौं सनाथ ह्वैहौं सही, तुमहूँ अनाथपति,
जो लघुतहि न भितैहो॥
विनय करौं अपभयहुँ तें तुम्ह परम हितैहो।
तुलसिदास कासों कहै? तुमही सब मेरे—
प्रभु गुरु मातु पितैहो॥

अपनी असहायावस्था का कितनी करुणा के साथ तुलसी ने निम्नांकित पंक्तियों में चित्रण किया है—

तुम अनि मन मैलो करो, लोचन अनि फेरो।
सुनहु राम बिनु रावरे लोकहुँ परलोकहुँ,
कोउ न करै हित मेरो॥
अगुन अलायक आलसी जानि अधम अनेरो।
स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजरा को सो टोटक,
औचट उलटि न हेरो॥

मतिहीन, वेद-बाहिरो लखि कलिमल घेरो ।
देवनिहूँ, देव ! परिहर्‌यो, अन्याव न तिनको,
हौं अपराधी सब केरो ॥
नाम की ओट ले पेट भरत हौं, पै कहावत चेरो ।
× × ×
देव ! दिनहूँ दिन है बिगरिहै, बलि जाऊँ,
बिलंब किये, अपनाइये सबेरो ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'विनयपत्रिका' में तुलसी ने अपने हृदय की भाव-निधि का समस्त सौन्दर्य उन्मुक्त कर दिया है । बिना किसी प्रकार की कृत्रिमता या आडम्बर के उन्होंने अपने चित्त की निर्मलता एवं सरलता की अभिव्यक्ति की है । यद्यपि इस पुस्तक में हमें मानव-हृदय की विभिन्न दशाओं का चित्रण तो नहीं मिलता, तथापि जिस क्षेत्र को तुलसी ने चुना है, उसमें उन्होंने किसी भाव को छिपाया नहीं । यही उनके भाव-सौन्दर्य की सबसे बड़ी विशेषता है ।

प्रश्न १६—'विनयपत्रिका' को आप प्रबन्ध-काव्य मानते हैं अथवा मुक्तक-काव्य ? तर्कपूर्वक अपने मत का प्रतिपादन कीजिए ।

उत्तर—काव्य को आचार्यों ने दो भेदों में विभाजित किया है (१) प्रबन्ध-काव्य, और (२) मुक्तक काव्य । प्रबन्ध-काव्य के लिए कथावस्तु, नायक और रस की अनिवार्यता घोषित की गई है । कथावस्तु का संगठन घटनाओं से होता है । भावों से भी किसी लघु घटना को लेकर वस्तु-संगठन किया जा सकता है, किन्तु उसमें भाव का क्रमिक विकास उस लघु घटना की भूमि पर अपेक्षित होता है । प्रबन्ध-काव्य की घटना भूमिका, विकास और उपसंहार के क्रमों को सुगठित रूप में पार करती हुई अन्त में काव्य के रस का आस्वाद पाठक को कराती है । अतः प्रबन्ध-काव्य में नायक की अनिवार्यता मानी गई है । नायक ही उसकी कथावस्तु को लेकर चलता है । वह मुख्य घटना में आकर मिलने वाली विभिन्न लघु घटनाओं का सूत्र सम्हालता है । उसका चरित्र भी घटना के साथ-साथ विकसित होता है । घटना और चरित्र मिलकर रस की निष्पत्ति में सहायक होते हैं । जीवन के विविध रूप तथा प्रकृति के विविध चित्र, घटना, चरित्र तथा रस की योजना में सहायक होते हैं । मुक्तक-काव्य में ये सब बातें स्थान नहीं पा सकतीं । उसमें भावों, घटनाओं, चरित्र तथा रस की स्फुट अभि-

व्यक्ति रहती है। गेयता भी उसकी भाव-योजना का एक विशेष धर्म है। अतः किसी काव्य को मुक्तक या प्रबन्ध की कोटि में रखने का निर्णय उतना विवादास्पद नहीं होना चाहिए, जितना कि प्रायः तार्किकों द्वारा बना दिया जाता है।

'विनयपत्रिका' के नाम से प्रकट है कि वह एक प्रार्थना-पत्र है, जिसमें विनय की प्रधानता है। यह पत्र तुलसीदास जी ने भगवान् 'राम' को लिखा है। 'राम' उनके लिए महाराजाधिराज हैं। पत्र लिखने का कारण तुलसीदास का कलियुग से पीड़ित होना है। राजा के दरबार के समस्त नियमों का पालन करते हुए उन्होंने अपने प्रार्थना-पत्र को राजा 'राम' के पास भेजा है। अतः उसी पत्र में उन्होंने उन दरबारी देवताओं की स्तुति की है, जिनके हाथों से होता हुआ वह राम तक पहुँचेगा। फिर अपने उन भावों की अभिव्यक्ति की है जिन्हें वे राम के पास पहुँचाना चाहते हैं। स्पष्ट है कि 'विनयपत्रिका' का वह विषय कथावस्तु-विहीन है। हम उसमें न कोई घटना पाते हैं और न नायक के चरित्र का विकास। कुछ आलोचकों ने तुलसी के कलियुग से पीड़ित होने को एक घटना माना है तथा कहा है कि उस घटना को देवताओं से लेकर राम तक सुनाया गया है। घटना के शिकार तथा उसे सुनाने वाले 'तुलसी' हैं। यह सुनाने की क्रिया भी उन आलोचकों के मत से एक घटना है। इस प्रकार विनयपत्रिका को उन आलोचकों ने कथावस्तु पर आधारित माना है। उनकी दृष्टि से तुलसी उस कथावस्तु को लेकर चलने वाले हैं, अतः वे ही नायक हैं। घटना के रस के भोक्ता भी उन आलोचकों की दृष्टि मे तुलसी ही हैं। प्रारम्भ से अन्त तक समस्त विनयपत्रिका में 'रस-निष्पत्ति' के लिए भी सुन्दर भाव-योजना मिलती है। शान्त रस की विशद योजना को 'विनयपत्रिका' में पाकर वे प्रबन्ध-काव्य का रस-सम्बन्धी दृष्टिकोण भी सिद्ध कर देते हैं। मानव-जीवन तथा प्रकृति की भी स्फुट अभिव्यक्ति उसमें मिल ही जाती है। अतः कुछ आलोचकों ने 'विनयपत्रिका' को प्रबन्ध-काव्य सिद्ध करने की चेष्टा की । इस सम्बन्ध मे इस मत की आलोचना करते हुए अपने शोध-प्रबन्ध ... संस्कृति-साहित्य का प्रभाव' मे डा० सरनामसिंह शर्मा ... हैं—

विद्वान् विनयपत्रिका को प्रबन्ध-काव्य मान लेते हैं। उनके मत से ... यथा-क्रम हुई है। वे इसमें एक आवेदन-पत्र (अर्जी) के विषय-

क्रम का अनुमान करते हैं। यह मान्य है कि दैव-स्तुति में क्रम है, किन्तु यह नहीं माना जा सकता कि यहाँ घटना का भी क्रमिक विकास है। गुरु-स्तुति के अनुरूप किसी भी घटना का कहीं भी स्मरण कर लिया गया है। प्रत्येक पद के निरपेक्ष होने से इस रचना को स्फुट पदों का संग्रह-मात्र ही कह सकते हैं। भिन्न-भिन्न पदों में पृथक् पृथक् आलम्बन का होना, उनकी स्फुटता का प्रमाण है। रचना के नायक का नायकत्व सम्बन्ध-कल्पना के बल पर है, वस्तु-व्यापार की एकता के आधार पर नहीं।"

मेरा मत भी डा० शर्मा के मत से मिलता है। मैं यह स्वीकार करने को तैयार नहीं कि विनयपत्रिका एक प्रबन्ध-काव्य है। इस सम्बन्ध में जो कारण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, वे उक्त आलोचक डा० सरनामसिंह जी के ही शब्दों में पुनः द्रष्टव्य हैं—

"विनय की भूमिकाओं में दैन्य के स्तरों का जो आवर्तन दीख रहा है, उसमें उसमें किसी क्रमिक विकास का रूप नहीं बनता। यदि कलि-काल की शिकायत को एक घटना मान लें और उसी को वस्तु-व्यापार का स्कन्ध समझ लें तो तुलसीदास को नायक बनाना पड़ता है। कथावस्तु को लेकर चलने वाला ही तो नायकत्व का अधिकारी होता है। कलि-काल की शिकायत कोई घटना नहीं है, वह तो एक भाव है। भाव के आधार पर भी नायक की कल्पना हो सकती है, किन्तु प्रबन्ध-काव्य के नायक की नहीं। प्रबन्ध में भाव के प्रवाह अथवा क्रमिक विकास के बिना नायक की कल्पना उचित नहीं है। परिभ्रमण के कारण नायक में गति दीख पड़ती है, किन्तु विकेन्द्रीकरण के कारण स्थिति या भाव में विकास नहीं है। दूसरी बात जो विनयपत्रिका के प्रबन्धत्व का विरोध करती है, वह है—उसकी गीतात्मकता। कुछ पदों को छोड़कर जिसमें प्रारम्भिक पद प्रमुख हैं, विनयपत्रिका के पद सुन्दर गीतों के प्रमाण हैं। संगीत और भाव—दोनों की कसौटी पर पूरे गीत उतर सकते हैं। स्वभावानुभूति के प्रकाशन की प्रमुखता और वस्तु-निरोप के अभाव से इस रचना के सारे गुण मुक्तक गीत के ही हैं।"

वस्तुतः आलोचकों के भ्रम का कारण डा० शर्मा के इन शब्दों में निहित है कि "प्रबन्ध की सिद्धि न होते हुए भी कवि-कला ने रचना में वह स्थिति और क्षमता निष्पन्न कर दी है कि उसमें प्रबन्ध का आभास-सा मिलता है।"

किन्तु जब हम यह कहते हैं कि विनयपत्रिका प्रबन्ध-काव्य नहीं है, क्योंकि (१) उसमें घटनाओं का अभाव है तथा कथावस्तु का विकास नहीं मिलता (२) चरित्रों का अभाव है तथा नायक की योजना नहीं की गई, एवं (३) उसमें प्रबन्धकाव्यानुकूल वर्णन तथा रस-योजना भी नहीं मिलती, तब हमें यह भी देख लेना चाहिए कि वह 'मुक्तक काव्य' ही क्यों है।

जैसा कि डा० शर्मा के मत में व्यक्त किया गया है, विनयपत्रिका में भाव की प्रधानता है और भाव योजना भी क्रमिक विकास के रूप में वस्तु नहीं बन सकी है। उसके लिए विभिन्न आलम्बनों की योजना है और विभिन्न रूपों में तुलसी उसके आश्रय बने हैं। उदाहरण के लिए गणेश-वन्दना में गणेश और तुलसी आलम्बन व आश्रय हैं। सूर्य-वन्दना में सूर्य को आलम्बन बनाया गया है। सीता की वन्दना में तुलसी की आश्रयावस्था का वही रूप नहीं है, जो गणेश-वन्दना या सूर्य-वन्दना में मिलता है। फिर कहीं-कहीं तो तुलसी अपने मन को ही समझाने बैठ गए हैं; यथा—

> मन पछितैहै अवसर बीते।
> दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, वचन अरु ही ते॥
> सहसाबाहु दसबदन आदि नप, बचे न काल बलो ते।
> हम-हम करि धन-धाम सँवारे, अन्त चले उठि रीते॥
> सुत बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते॥
> अन्तहुँ तोहि तजेंगे पामर! तू न तजै अबही ते॥
> अब नाथहि अनुरागु जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते।
> बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ, विषय भोग बहु घी ते॥

ऐसे पद स्पष्टत विनयपत्रिका को मुक्तक काव्य घोषित कर देते हैं। फिर जहाँ तुलसी ने भक्ति के भावो में डूबकर भावावेश की एक ही दशा में स्थित होकर राम की अनेक पदो में विनय की है या अपनी त्रुटियों का कोष खोला है और आत्मग्लानि की व्यजना की है, वहाँ तो प्रबन्ध-काव्य का अनुमान भी बुद्धि की भूमि तक नही आ सकता। हम इस प्रकार के पदों के वृहद् संग्रह को प्रबन्ध-काव्य की कोटि में क्या सोचकर रख सकते हैं—

> माधव, मो समान जग नाहीं।
> सब विधि हीन, मलीन, दीन, अति, लीन-विषय कोउ नाहीं॥

तुम सम हेतु-रहित कृपालु आरत-हित ईस न त्यागी।
मैं दुख-सोक बिकल, कृपालु केहि कारन दया न लागी ॥
नाहिन कछु औगुन तुम्हार अपराध मोर मैं माना।
ग्यान-भवन तनु दियहु नाथ, सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ॥
बेनु करील, श्रीखण्ड बसन्तहि दूषन मृषा लगावै।
सार-रहित हत-भाग्य सुरभि, पल्लव सो कहु किमि पावै ॥
सब प्रकार मैं कठिन, मृदुल हरि, दृढ़ बिचार जिय मोरे।
तुलसिदास प्रभु मोह-शृंखला, छूटिहि तुम्हरे छोरे ॥

भावों की स्फुटता, कथावस्तु तथा नायक का अभाव और गीतात्मकता का आधिक्य, जैसा कि उपर्युक्त दो पदों से स्पष्ट है, विनयपत्रिका को एक मुक्तक-काव्य की ही कोटि में ले आता है। हम उसमें काव्य-कला का यह रूप जो एक मुक्तक काव्य के लिए अपेक्षित है, सर्वत्र देखते हैं। अतः हमें यह कहने में कोई सकोच नहीं कि 'विनयपत्रिका' एक सुन्दर मुक्तक काव्य है।

प्रश्न १७—'रस' की दृष्टि से विनयपत्रिका की आलोचना कीजिये।

उत्तर—'रस' काव्य की आत्मा माना जाता है। काव्य पढ़ने में पाठक का प्रमुख उद्देश्य रसास्वादन ही होता है। अतः प्रत्येक कुशल कवि अपनी कविता मे अभिव्यक्त भावो को रस की दशा तक पहुँचाने की पूर्ण चेष्टा करता है। तुलसी तो रस-सिद्ध कवि थे। अतः उनके काव्य मे सभी रसों का स्थानानुकूल चरम उत्कर्ष मिलता है। 'विनयपत्रिका' एक भाव-प्रधान काव्य है। इसमे उन्होने अपनी भक्ति-भावना को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया है। अतः भक्ति के अनुकूल हृदय की जिस निर्वेद दशा की अपेक्षा होती है, वह विनयपत्रिका मे पर्याप्त मात्र मे पाई जाती है। इस दृष्टि से उसमे शान्त रस की प्रधानता होना स्वाभाविक है। किन्तु भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति के लिए तुलसी ने हृदय की अन्य दशाओं का भी चित्रण किया है। फलतः गौण रूप मे विनयपत्रिका मे शृङ्गार करुण, रौद्र, भयानक आदि रसों को भी स्थान मिल गया है।

यहाँ सक्षेप मे उक्त सभी रसो के उदाहरण प्रस्तुत कर विनयपत्रिका मे तुलसी की रस-व्यजना का स्वरूप स्पष्ट करने की चेष्टा की जायगी, यथा—

शान्त रस

यह विनयपत्रिका का प्रधान रस है। 'निर्वेद' इसका स्थायीभाव होता है,

जिसकी तुलसी ने विनय सम्बन्धी पदों में विस्तार से अभिव्यक्ति की है। स्थायीभाव के लिए आलम्बन की सबसे पहले आवश्यकता होती है, क्योंकि उसके बिना भाव का जागरण असम्भव है। तुलसी ने अनन्त अनादि परमब्रह्म के लीलावतार 'राम' को अपने हृदय के निर्वेद भाव का आलम्बन बनाया है और आश्रय स्वयं बने हैं। ग्लानि, गर्व, दीनता, मोह, हर्ष, अमर्ष, व्याधि, शंका, चिन्ता आदि संचारियों से परिपुष्ट होकर तुलसी का 'निर्वेद' स्थायीभाव शान्त रस की निष्पत्ति में सहायक हुआ है। विनयपत्रिका में ऐसे पदों की संख्या सीमित नहीं, जिनमें हमें इस रस की अभिव्यक्ति मिलती है। कुछ उदाहरण देखिए—

> लाभ कहा मानुष तनु पाये।
> काय-बचन-मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराये॥
> जो सुख सुरपुर नरक गेह बन आवति बिनहिं बुलाये।
> तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन, समुझत नहिं समुझाये॥
> पर-दारा, पर-द्रोह, मोहबस किये मूढ़, मन भाये।
> गरभबास दुखरासि जातना तीव्र बिपति बिसराये॥
> भय, निद्रा, मैथुन, अहार सबके समान जग जाये।
> सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरि, मद अभिमान गँवाये॥
> गई न निज-पर-बुद्धि, सुद्ध ह्वै रहे न राम-लय लाये।
> तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछताये॥

इस पद में तुलसी के हृदय की निर्वेदावस्था का अत्यन्त प्रभावशाली और मार्मिक भव्य चित्रण मिलता है। उनका वह निर्वेद भाव सहज में स्थायित्व नहीं पा गया, अनेक संचारियों ने उसका पोषण किया है। ये संचारी भाव विनयपत्रिका की विभिन्न पंक्तियों में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं; यथा—

तुलसी कलिकाल को देखकर भयभीत होते हैं—"डरत हौं देखि कलिकाल को कहरु।" इस पंक्ति में 'शंका' संचारी को स्थान मिला है।

फिर वे 'चिन्ता' करते हैं—

> कलिमल ग्रसित दास तुलसी पर काहे कृपा बिसारी।

वे कारण भी समझ जाते हैं। सोचते हैं कि मुझे मूढ़ मन ने भ्रमित किया है। अतः उनके हृदय में 'विषाद' संचारी को स्थान मिलता है—

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिए सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो।।

अतः उन्हें 'ग्लानि' भी होती है—

बड़ी ग्लानि हिय हानि है सर्वज्ञ गुसाईं।
कूर कुसेवक कहत हौं सेवक की नाईं।।

फिर अपनी 'दीनता' दिखाते हैं—

दिन दुरदिन, दिन दुरदसा, दिन दुख, दिन दूषन।
जब लौं तू न बिलोकिहै रघुबस विभूषन।।

फिर राम-पद मे अनायास उनका मन लग जाता है। तब उनके हृदय मे 'गर्व' सचारी भी दिखाई देता है; वे कहते हैं—

तुलसिदास अनयास राम पद पइहै प्रेम पसाउ।

इस प्रकार विभिन्न संचारियो से जो निर्वेद-भाव तुलसी के हृदय मे पुष्ट हुआ है, उसके लिए तीर्थ, देवता आदि उद्दीपन सामग्री के रूप मे हमे विनय-पत्रिका मे मिल जाते हैं; तुलसी कभी तो कहते हैं—

सेइय सहित सनेह देहभरि, कामधेनु कलि-कासी।
सब सोच-बिमोचन चित्रकूट।
कलिहरन, करन कल्यान बूट।

देवताओं की स्तुतियों से भी तुलसी के हृदय के निर्वेद-भाव को उद्दीपन मिलता है, इसका प्रमाण शिवजी के प्रति लिखी गई निम्नांकित स्तुति है—

दानी कहुँ, संकर-सम नाहीं।
दीनदयालु दिबोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं।

तुलसी का निर्वेद-भाव सचारियों एव उद्दीपनों से परिपक्व होकर विभिन्न अनुभावों के साथ शान्तरस की अवस्था को पहुँचा है। अनुभाव के उदाहरणों की विनयपत्रिका मे कमी नहीं, यथा—

सजल नयन, गद्‌गद् गिरा,
गहबर मन पुलक सरीर।

हास्य रस

विनयपत्रिका मे शान्त रस के अतिरिक्त अन्य रस भी खोजने पर मिल ही जाते हैं। हास्य रस का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण तुलसी का निम्नांकित पद है—

बावरो रावरो नाह भवानी ।
दानि बड़ो, दिन देत, दये बिनु बेद बड़ाई भानी ।।
निज घर की बरबात बिलोकहु, हो तुम परम सयानी ।
सिव की दई सम्पदा देखत, श्री-सारदा सिहानी ।।
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी ।
तिन रंकन को नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी ।।
दुखी-दीनता दुखियन के दुख, जाचकता अकुलानी ।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी ।।
प्रेम-प्रसंसा-बिनय-ब्यंगजुत, सुनि बिधि की बरबानी ।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत-मातु मुसकानी ।।

शृंगार रस

ईश्वर-विषयक रति की अभिव्यक्ति का निम्नांकित उदाहरण शृङ्गार रस की सीमा में आता है—

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भवभय-दारुनं ।
नवकंज-लोचन, कंजमुख, करकंज, पदकंजारुन ।।
कंदर्प-अगनित-अमित छबि, नवनील नीरद सुन्दरं ।
पटपीत मानहुँ तड़ित रुचि सुचि, नौमि जनक-सुतावरं ।।
भजु दीनबन्धु दिनेश दानव-दैत्य-वंस, निकंदनं ।
रघुनन्द आनन्दकन्द कौसलचन्द दसरथ-नन्दन ।।
सिर मुकुट, कुण्डल तिलक चारु, उदारु अंग विभूषनं ।
आजानुभुज, सर-चाप-धर, संग्राम-जित-खरदूषन ।।
इति बदति तुलसीदास संकर-सेष-मुनि-मन-रंजन ।
मम हृदय-कंज निवास करु, कामादि-खल-दल-गंजन ।।

. रस

विनयपत्रिका मे करुण रस की स्फुट रूप में कई पदो मे अभिव्यक्ति मिलती एक उदाहरण लीजिए—

पाहि-पाहि राम ! पाहि, रामभद्र रामचन्द्र,
सुजस स्रवन सुनि आयो हौं सरन ।
दीनबन्धु ! दीनता-दरिद्र-दाह-दोष-दुख,
दारुन - दुसह - दर - दरप - हरन ।।

तथा—

कहाँ जाउँ, कासों कहौं, कौन सुनै दीन की ।
त्रिभुवन तू ही गति सब अगहीन की ॥

भयानक रस

ढूँढने पर विनयपत्रिका मे भयानक रस की पंक्तियाँ मिल ही जाती हैं; यथा—

पन करि हौं हठि आजु तें रामद्वार परो हौं ।
× × ×
दे दे धक्का जमभट थके, टारे न टर्यो हौं ।
उदर दुसह साँसति सही बहु बार जनमि—
जग, नरक निदरि निकर्यो हौं ।
हौं मचला लै छाँड़िहौं जेहि लागि अर्यो हौं ।

वीर रस

वीर रस के भी उदाहरण विनयपत्रिका मे मिलते हैं ।

यथा—

जयति जय सत्रु-करि-केसरी सत्रुहन,
सत्रुतम तुहिनहार - किरनकेतु ।
× × ×
धर्म - वर्मासि - धनु-बान - तूनीर-धर,
सत्रु-संकट-समन यत्प्रनामी ।
जयति लवनाम्बु निधि-कुम्भ-सम्भव महा-
दनुज - दुर्जन - दवन दुरितहारी ।

तथा—

ताकि है तमकि ताकी ओर को ।
जाको है सब भाँति भरोसो कपि केसरी किसोर को ॥
जन-रंजन अरिगन-गंजन मुख-भंजन खल बरजोर को ।
बेद पुरान प्रगट पुरुषारथ सकल सुभट-सिरमोर को ॥
उथपे-थपन, थपे उथपन पन, बिबुधबृन्द बंदि छोर को ।
जलधि लाँघि दहि लंक प्रबल दल दलन निसाचर घोर को ॥

जाको बालविनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को।
जाकी चिबुक चोट चूरन किय रद-मद कठोर को॥
लोकपाल अनुकूल बिलोकिबो चहत बिलोचन कोर को।
सदा अभय, जय मुदमंगलमय जो सेवक रनरोर को॥

रौद्र रस

चंड-भुज दंड खंडनि बिहंडनि महिष,
मुंड मद भंग कर अंग तोरे।
सुंभ निसुंभ कुंभीस रन-केसरिनि,
क्रोध-बारीस अरि वृन्द बोरे॥

जहाँ वीर रस के कई उदाहरण विनयपत्रिका में मिलते हैं, वहाँ रौद्र रस की भी उसमें कमी नहीं पाई जाती। कुछ पंक्तियाँ देखिए—

इस प्रकार हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि तुलसी की विनयपत्रिका में प्रधान रस 'शान्त रस' है तथा अन्य रसों की भी उसमें उपेक्षा नहीं की गई है। ढूँढ़ने पर हमें उसमें शृंगार, वीर, करुण, हास्य, भयानक, रौद्र आदि के भी स्फुट उदाहरण मिल जाते हैं।

प्रश्न १८—"विनयपत्रिका में कवि पूर्णतः प्रकृति-चित्रण की उपेक्षा नहीं कर सका।" इस कथन की सार्थकता पर सोदाहरण विचार कीजिये।

उत्तर—प्रकृति का सम्पर्क मनुष्य को जन्म से ही प्राप्त हो जाता है। कोई भी मनुष्य उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। जीव-सृष्टि का विकास पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर है। काव्य में भी जीवन का एक अंग बनकर प्रकृति अपने लिए स्थान बनाती है। कोई भी कवि चेष्टा करने पर भी उसकी अभिव्यक्ति से अपनी काव्य-कृति को नहीं बचा सकता। विनयपत्रिका के विषय-क्षेत्र में प्रकृति के चित्रण के लिए यद्यपि अधिक स्थान नहीं है, तथापि तुलसीदास उसकी पूर्णतः उपेक्षा नहीं कर सकते हैं।

काव्य में प्रकृति-चित्रण के जिन प्रमुख रूपों का विकास अब तक हुआ है, उनमें निम्नांकित की विशेष महत्ता है—

(१) आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण—इस प्रकार के चित्रण में प्रकृति को स्वतन्त्र रूप में चित्रित किया जाता है। इसके भी चार उपभेद हैं—

अ—बिम्ब-ग्रहण के रूप में,
ब—नाम-परिगणन के रूप में,

स—छायावादी रूप में; तथा

द—मानवीकरण के रूप मे ।

(२) उद्दीपन रूप मे प्रकृति-चित्रण ।

(३) प्रतीक रूप मे प्रकृति-चित्रण ।

(४) अलकार-योजना के लिए प्रकृति-चित्रण ।

(५) रहस्यात्मक रूप में प्रकृति-चित्रण ।

(६) वातावरण-सृष्टि के रूप मे प्रकृति-चित्रण ।

(७) सवेदनात्मक प्रकृति-चित्रण ।

(८) उपदेशात्मक रूप में प्रकृति-चित्रण ।

(९) दूती या दूत के रूप में प्रकृति-चित्रण ।

विनयपत्रिका में इन सभी रूपों में प्रकृति-चित्रण नहीं मिलता । केवल निम्नांकित रूपों में ही वह उपलब्ध है—

१—आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण

विनयपत्रिका में तुलसी की कल्पना एव अनुभूति को कथा का बन्धन न होने के कारण विशेष स्वतन्त्रता मिली है । अत: वे इस काव्य मे कतिपय स्थानों पर प्रकृति का आलम्बन रूप में भी चित्रण करने में समर्थ हुए हैं । छायावादी और मानवीकरण के रूप में प्रकृति-चित्रण की पद्धतियों का आधुनिक काव्य में प्रचलन हुआ । अत: उनसे तो तुलसी परिचित नहीं थे, किन्तु शेष दो प्रकार से आलम्बन के अन्तर्गत उन्होंने प्रकृति को चित्रित किया है, कुछ उदाहरण देखिए—

(क) सुचि अवनि सुहावनि आलबाल ।
कानन बिचित्र बारी बिसाल ॥
मन्दाकिनि-मालिनि सदा सींच ।
बर-बारि, बिषम नर नारि नीच ॥
साखा सुसृंग, भूरुह सुपात ।
निरझर मधुबर मृदुमलय बात ॥
सुक, पिक, मधुकर, मुनिबर बिहारु ।
साधन प्रसून, फल चारि चारु ॥
भव-घोरघाम हर सुखद छाँह × ×
× × सैल्य गिरि करि निरुपाधि नेम ॥

इस चित्रण में यद्यपि आलंकारिकता भी है और चित्रकूट के भक्ति-परक महत्त्व की स्थापना की ओर भी कवि का ध्यान है, तथापि उसके प्राकृतिक रूप को कवि ने आलम्बन रूप में ही ग्रहण किया है, यह मानना भी अनुचित नहीं—

(ख) गत-कंबल बरना बिभाति जनु,
लूम लसित सरिता-सी ॥
× × ×
मनिकर्णिका बदन-ससि सुन्दर ।
सुरसरि-सुख सुखमा-सी ॥

तथा—

जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न ।
त्यों त्यों सुकृत-सुभट कलि-भूपहिं, निदरि लगे बहु काढ़न ॥
ज्यों ज्यों जल मलीन त्यों त्यों जम-गन मुख मलीन लहै आढ़न ।
तुलसिदास जगदघ ज्यों अनघमेघ लगे डाढ़न ॥

इन पंक्तियों में भी आलंकारिकता के साथ नदियों का चित्रण आलम्बन रूप में ही किया गया है ।

(ग) गंगा का यह स्वतन्त्र चित्रण भी ध्यान देने योग्य है—

बिमल बिपुल बहसि बारि, सीतल त्रयताप हारि,
भँवर बर बिभंगतर तरंग-मालिका ।
पुरजन पूजोपहार, सोभित ससि धवलधार,
भजन-भव-भार, भक्ति-कल्पथालिका ।
निज तटबासी बिहंग, जल-थल-चर पसु-पतंग,
कीट, जटिल तापस सब सरिस पालिका ।

२—अलंकार-योजना के लिए प्रकृति-चित्रण

...ी ने विनयपत्रिका में प्रतीक तथा रहस्यात्मक रूपों में भी प्रकृति-... किया, किन्तु अलंकार-योजना के लिए तो उन्होंने बार-बार ...क रूप में प्रकृति को प्रस्तुत किया है । वसन्त की बहार का यह ...क चित्रण शिव-शरीर की प्रधान वर्णना के साथ कैसा सुन्दर लग

देखो देखो, बन बन्यो आजु उमाकंत।
मनो देखन तुमहिं आई ऋतु बसंत॥
जनु तनु दुति चंपक-कुसुम माल।
बर बसन नील नूतन तमाल॥
कल कदलि जंघ, पद कमल लाल।
सूचति कटि केहरि, गति मराल॥
भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग।
नूपुर किंकिनि कलरव बिहंग॥
कर नवल-बकुल, पल्लव रसाल।
श्रीफल कुच, कंचुकि लता-जाल॥
आनन सरोज, कच मधुप पुंज।
लोचन बिसाल नव-नील कंज॥
पिक बचन चरित बर बर्हि कीर।
सित सुमन हास लीला समीर॥

अलंकार-योजना के लिए प्रकृति-चित्रण के, इसके अतिरिक्त स्फुट रूप में अन्य अनेक पदों से उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। यथा—

(क) श्याम नव तामरस-दामद्युति वपुष,
छवि कोटि मदनार्क अगणित प्रकाशं।
तरुण रमणीय, राजीव-लोचन ललित,
वदन राकेश कर-निकर हासं॥

× × ×

अरुण पद-कंज-मकरंद मन्दाकिनी,
मधुप मुनि वृन्द कुर्वन्ति पानं।

× × ×

दुष्ट, वन संसरति बहिरावरण,
सदासीन पद्मासन एक रूप।

(ख) अरुण तामरस लोचन, बिलोकनि चारु,
श्रवण युग सुंदर, करन्याइं लोल।
काम-मदराज-मृगराज दनुजेश-बन-दहन,
पावक मोह-निशि-दिनेशं।

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे ।
नाहिन भव बेगारि महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई रे ।।
बाँस पुरान साज सब अटखट, सरल तिकोन खटोला रे ।
हमहिं दिहल करि कुटिल करमचंद मन्द मोलबिनु डोला रे ।।
बिषम कहार मार मदमाते चलहिं न पाँव बटोरा रे ।
मन्द बिलन्द अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे ।।
काँट कुराय लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाऊँ बझाऊ रे ।
जस-जस चलिय दूर तस-तस निज बाँस न भेंट लगाऊ रे ।।
मारग अगम, संग नहिं सबल, नाऊँ गाऊँ कर भूला रे ।
तुलसिदास भव-त्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे ।।

विनयपत्रिका में तुलसी ने बुन्देलखण्डी के शब्दों का ज्ञान भी अनेक पदों में प्रकट किया है । पनवार, सेरे आदि शब्द बुन्देलखण्डी के हैं, जिन्हे उन्होंने प्रयुक्त किया है । यही तक नही, उर्दू-फारसी के शब्दों का भी विनयपत्रिका में प्रयोग मिल जाता है, जिससे तुलसी के शब्द-ज्ञान की परिधि बहुत विस्तीर्ण हो गई है । निसानो, मदम, ख्याल, बिलन्द, मिसकीनता आदि फारसी-शब्द तथा दिरमानी, फहम, सौदा, निवाज आदि अरबी-शब्द इस सम्बन्ध में यथेष्ट प्रमाण हैं ।

वाक्य-पटुता

केवल शब्द ज्ञान ही अद्भुत नही, तुलसी की वाक्य-योजना में भी पर्याप्त पटुता का प्रमाण मिलता है । उन्होने वाक्यो का गठन तथा प्रयोग भावो के अनुकूल किया है । विनयपत्रिका में ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाते हैं, जिनसे उनकी पूर्ण वाक्य-पटुता सिद्ध होती है; कुछ उदाहरण देखिए—

(क) कहाँ जाऊँ कासों कहौं, कौन सुनै दीन की ।
त्रिभुवन तुही गति सब अंग-हीन की ।।
जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं ।
निराधार के आधार गुन-गन तेरे हैं ।।

(ख) कबहुँक अम्ब अवसर पाइ ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन-कथा चलाइ ।।

निस्सन्देह तुलसी वाक्य-प्रयोग में बड़े पटु हैं । उनकी भाषा को उनकी वाक्यावली की इस पटुता ने भी पर्याप्त सौन्दर्य प्रदान किया है ।

चारि भुज चक्र-कौमोदकी-जलज-वर,
सरसिजोपरि यथा राजहंस।

विनयपत्रिका में प्रकृति-चित्रण के ये रूप ही प्रधान हैं। अन्य कतिपय रूपों में भी यत्र-तत्र स्फुट चित्रण मिल जाता है; यथा—संवेदनात्मकता तथा वातावरण सृष्टि के रूप में भी उन्होंने प्रकृति-चित्रण किया है। उपदेशात्मकता को तो भक्तिमार्गी कोई भी कवि नहीं छोड़ सका। स्फुट पंक्तियों में तुलसी ने भी अपनी यह प्रवृत्ति दिखा दी है; कहीं तो वे कहते हैं—

ज्यों कदली-तरु-मध्य निहारत,
कबहुँ न निकसत सार।

और कभी कहते हैं—

पावक-काम भोग-घृत तें सठ कैसे परत बुझायो।

दूत-दूती रूप में किए जाने वाले प्रकृति-चित्रण का आभास हम वहाँ पा सकते हैं, जहाँ तुलसी पवित्र जल वाली निर्मल-हृदया गंगा से, राम तक अपनी भक्ति का सन्देश पहुँचाने तथा उनकी कृपा-दृष्टि पाने के लिए दूती का काम लेते हैं—

सारांश रूप में यही कहा जा सकता है कि तुलसी ने विनयपत्रिका में प्रकृति-चित्रण की पूर्णतः उपेक्षा नहीं होने दी। उसमें भक्ति की प्रधानता होते हुए भी प्रकृति-चित्रण को पर्याप्त स्थान प्राप्त हुआ है।

प्रश्न १६—"विनयपत्रिका की भाषा में तुलसी के शब्द-ज्ञान, वाक्य-पटुता, अर्थ-गौरव, उक्ति-वैचित्र्य एवं लोक-जीवन के आधार पर कहावत तथा मुहावरों के प्रयोग की कुशलता का चरमोत्कर्ष प्राप्त होता है।" उपर्युक्त उद्धरण देकर कथन का औचित्य सिद्ध कीजिए।

उत्तर—तुलसी के काव्य में भाव और भाषा का पूर्ण सामञ्जस्य मिलता है। वे विषय के अनुकूल भाषा का प्रयोग करने में पूर्ण दक्ष हैं। 'श्रीरामचरितमानस' को पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है, मानो भाषा उनके भावों का अनुसरण कर रही है। उनकी गीतावली आदि कृतियों में रस और गुण के अनुरूप बड़ी ही प्रभावपूर्ण भाषा का प्रयोग मिलता है। विनयपत्रिका में हमें उनकी भाषा का सर्वोत्कृष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है। इस काव्य में उन्होंने भक्ति और विनय के अनुकूल सरल एवं क्लिष्ट सभी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया

है। हमें उनका भाषाधिकार देखकर सचमुच विनयपत्रिका पढ़ते समय आश्चर्य होने लगता है। 'श्रीरामचरितमानस' में हम उनकी अवधी का अत्यन्त भव्य रूप देख चुके हैं। 'विनयपत्रिका' में हमें उनकी ब्रजभाषा का वह रूप देखने को मिलता है, जो संस्कृत-शब्दावली से पर्याप्त प्रभावित है। भाषा पर उनके एकाधिकार का एक प्रमाण यह है कि उन्होंने शब्द-ज्ञान, वाक्य-पटुता, अर्थ-गौरव, उक्ति-वैचित्र्य तथा कहावतों-मुहावरों के प्रयोग की कुशलता का अद्भुत परिचय दिया है।

यहाँ हम संक्षेप में इन क्षेत्रों में तुलसी की भाषा का सौन्दर्य परखने की चेष्टा करेंगे; यथा—

शब्द-ज्ञान

तुलसी ने विनयपत्रिका में तद्भव और तत्सम—दोनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। शब्दों का रूप कहीं-कहीं पूर्णतः ब्रज का है और कहीं-कहीं संस्कृत व्याकरण से अनुशासित है। इससे तुलसी का शब्द-ज्ञान प्रकट होता है। वे जनता की भाषा को भी उसी अधिकार से समझने तथा काव्य में स्थान दे सकते थे, जितने अधिकार के साथ वे संस्कृत-शब्दावली का प्रयोग कर सकते थे। भावानुकूल शब्दों का चयन करने में उन्हें कठिनाई नहीं होती थी। इसका कारण यही था कि उनका शब्द-ज्ञान अद्भुत था। अब इस सम्बन्ध से कुछ प्रमाण भी लीजिए। निम्नांकित पंक्तियों में उनकी तत्सम-शब्दावली के ज्ञान की गरिमा अपने पूर्ण सौन्दर्य के साथ प्रकट हो रही है—

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणं।
नवकंज-लोचन, कंज-मुख, कर-कंज, पद-कंजारुणं॥
कंदर्प-अगणित-अमित छवि, नवनील नीरद सुन्दर।
पटपीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक-सुतावर॥

इन पंक्तियों में राम के रूप का भक्ति-भावना के साथ सुन्दर चित्र अंकित कर सकने में तुलसी की भाषा पूर्णतः समर्थ है। प्रत्येक शब्द तुलसी के शब्द-ज्ञान की गहराई का परिचायक है। यह तो रहा तत्सम शब्दावली-युक्त भाषा का प्रयोग; अब उनके तद्भव शब्दावली-युक्त भाषा-प्रयोग का भी एक उदाहरण देखिए—

जानि पहिचानि मैं बिसारे हौं कृपानिधान।
एतो मान ढीठ हौं उलटि देत खोरि हौं॥

करत जतन जासों जोरिबे को जोगीजन।
तासों बयोंहू जुरी, सो अभागो बैठो तोरि हौं ॥
मोसो दोस-कोस को भुवन-कोस दूसरो न।
आपनी समुझि सूझि आयो टकटोरि हौं ॥
गाड़ी के स्वान की नाई', माया मोह की बड़ाई।
छिनहिं तजत, छिन भजत, बहोरि हौं ॥

इन दोनों उदाहरणों मे तुलसी का शब्द-ज्ञान प्रकट होता है। ध्यान देने की बात यह है कि उन्होंने विनयपत्रिका में शब्दों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति मे पहले से कुछ परिष्कार कर दिया है। संस्कृत के शब्दों का रूप कहीं भी स्वय विकृत नहीं किया। साहित्य मे या समाज मे जो शब्द जिस रूप में चलता हुआ उन्हें मिला है, उसी रूप मे उन्होंने उसे ग्रहण किया है। वे शास्त्रीय शब्दावली से भी पूर्णतः परिचित हैं। दार्शनिक भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्दों का उन्होने पूर्णत· अनुकूल स्थानो पर प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में भी एक उदाहरण देना अनावश्यक न होगा; तुलसी कहते हैं—

प्रकृति महत्तत्त्व, शब्दादि, गुन-देवता,
व्योम, मरुदग्नि अमलांबु उर्वी
बुद्धि, मन, इन्द्रिय, प्रान, चित्तातमा,
काल, परमानु चिच्छक्ति गुर्वी।
सर्बमेमात्र-त्वद्रूप भूपाल-मनि,
व्यक्त अव्यक्त गतभेद विष्णो।
भुवन भवदग कामारि-बंदति पदद्वय,
मंदाकिन - जनक - जिष्णो।

तथा—

अनघ अद्वैत, अनवद्य अव्यक्त, अज,
अमित अविकार आनन्द सिन्धो।
दास तुलसी खेद-खिन्न, आपन्न इह,
सोक सम्पन्न अतिसय सभीत।

तुलसी के शब्द-ज्ञान की विशदता का एक प्रमाण यह भी है कि उन्होंने अवधी, बुन्देलखण्डी, भोजपुरी आदि के शब्दो का भी प्रयोग किया है; 'भोजपुरी' के प्रयोगो का एक उदाहरण देखिए—

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे।
नाहिन भव बेगारि महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई रे॥
बाँस पुरान साज सब अटखट, सरल तिकोन खटोला रे।
हमहिं दिहल करि कुटिल करमचंद मन्द मोलबिनु डोला रे॥
विषम कहार मार मदमाते चलहिं न पाँव बटोरा रे।
मन्द बिलन्द अभेरा दलकन पाइय दुख भकभोरा रे॥
काँट कुराय लपेटन लोटन ठाँवहि ठाऊँ बझाऊ रे।
जस-जस चलिय दूर तस-तस निज बाँस न भेंट लगाऊ रे॥
मारग अगम, संग नहिं सबल, नाऊँ गाऊँ कर भूला रे।
तुलसिदास भव-त्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे॥

विनयपत्रिका में तुलसी ने बुन्देलखण्डी के शब्दों का ज्ञान भी अनेक पदों में प्रकट किया है। पनवार, हेरे आदि शब्द बुन्देलखण्डी के हैं, जिन्हें उन्होंने प्रयुक्त किया है। यहीं तक नहीं, उर्दू-फारसी के शब्दों का भी विनयपत्रिका में प्रयोग मिल जाता है, जिससे तुलसी के शब्द ज्ञान की परिधि बहुत विस्तीर्ण हो गई है। निसानी, मदम, ख्याल, बिलन्द, मिसकीनता आदि फारसी-शब्द तथा दिरमानी, फहम, सौदा, निवाज आदि अरबी-शब्द इस सम्बन्ध में यथेष्ट प्रमाण हैं।

वाक्य-पटुता

केवल शब्द ज्ञान ही अद्भुत नहीं, तुलसी की वाक्य-योजना में भी पर्याप्त पटुता का प्रमाण मिलता है। उन्होंने वाक्यों का गठन तथा प्रयोग भावों के अनुकूल किया है। विनयपत्रिका में ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाते हैं, जिनसे उनकी पूर्ण वाक्य-पटुता सिद्ध होती है; कुछ उदाहरण देखिए—

(क) कहाँ जाऊँ कासों कहौं, कौन सुनै दीन की।
त्रिभुवन तुही गति सब अंग-हीन की॥
जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं।
निराधार के आधार गुन-गन तेरे हैं॥

(ख) कबहुँक अम्ब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन-कथा चलाइ॥

निस्सन्देह तुलसी वाक्य-प्रयोग में बड़े पटु हैं। उनकी भाषा को उनकी वाक्यावली की इस पटुता ने भी पर्याप्त सौन्दर्य प्रदान किया है।

अर्थ-गौरव

विनयपत्रिका की भाषा में अर्थ-गौरव भी पर्याप्त महत्ता रखता है। व्यर्थ शब्दावली का प्रयोग तुलसी ने कहीं भी नहीं किया। उनकी भाव-व्यंजना में भाषा पूर्ण सहायक हुई है। समस्त विनयपत्रिका की भाषा अर्थ-गाम्भीर्य के उदाहरणों से भरी पड़ी है। शब्दों का प्रयोग उतना महत्व नहीं रखता है, जितना महत्व उस प्रयोग द्वारा शब्दावली तथा वाक्यावली को अर्थ गौरव प्रदान करने का है। निम्नांकित पंक्तियों में हम उसी अर्थ-गौरव का प्रदर्शन करते हैं—

> केशव कहि न जाइ का कहिये।
> ✓ *देखत तव रचना विचित्र अति, समुझि मनहिं मन रहिये ॥*
> सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
> धोये मिटइ न, मरइ भीति, दुख पाइय इहि तनु हेरे ॥
> रविकर नीर बसै अति दारुन, मकर रूप तेहि माहीं।
> बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं।
> कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
> तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥

उक्ति-वैचित्र्य

तुलसी की भाषा में उक्ति की सरलता तथा सुबोधता जिस मात्रा में मिलती है, उसी मात्रा मे उन्होंने उक्ति-वैचित्र्य को भी उसमे स्थान दिया है। विनय के अनेक पदो मे उनकी भावुकता अपना बाँध तोड़कर वैचित्र्य की सीमा मे प्रवेश कर गई है, कुछ उदाहरण देखिए—

> बावरो रावरो नाह भवानी।
> दानि बड़ो दिन देत दए बिनु वेद बड़ाई भानी ॥
> निज घर की बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
> सिव की दई सम्पदा देखत, श्री सारदा सिहानी ॥
> जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी।
> तिन रंकन कौ नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी ॥
> दुखी दीनता दुखिइन के दुख, जाचकता अकुलानी।
> यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी ॥

कहावत तथा मुहावरों का प्रयोग

विनयपत्रिका की भाषा की एक विशेषता यह है कि तुलसी ने लोक जीवनगत अनेक कहावत तथा मुहावरों का सुन्दर प्रयोग कर उसकी भाव व्यक्त करने की शक्ति को पर्याप्त मात्रा में बढ़ा दिया है। निम्नांकित उदाहरण इस कथन की सत्यता के पर्याप्त प्रमाण हैं—

(क) हौं आयौं नवकानी।
(ख) तू पछितैहै मनमीजि हाथ।
(ग) हूँ हौं माखी घी की।
(घ) तू हिये की आँखिनि हेरि।
(ङ) गोपद बूड़िबो जोग करम करौं, बातनि जलधि थहावौं।
(च) गाँठी बाँध्यो दाम न परख्यो।
(छ) सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरो।
(ज) सपने न अघाइ।
(झ) दूध को जर्यो पियत फूँक-फूँक मह्यो।

इन मुहावरों का चयन लोक-जीवन से हुआ है, इसमें सन्देह नहीं तथा प्रयोग में भी पर्याप्त स्वाभाविकता का दर्शन होता है।

अन्त में हम यही कह सकते हैं कि 'विनयपत्रिका' में तुलसी की भाषा—शब्द-चयन, अर्थ-गाम्भीर्य, वाक्य-रचना, उक्ति-वैचित्र्य तथा कहावत व मुहावरों के प्रयोग आदि की दृष्टि से उनकी काव्य-कला को उत्कृष्टता प्रदान करने में पर्याप्त सहायक हुई है। हमें उसमें उनके भाषा-पाण्डित्य का सर्वत्र दर्शन होता है।

प्रश्न २०—'विनयपत्रिका' की अलंकार-योजना पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर—'अलंकार' काव्य का कला-पक्षीय तत्त्व है। भावों को सुन्दर रूप में व्यक्त करने के लिए तथा भाषा में सौन्दर्य लाने के लिए अलंकार-योजना अपेक्षित होती है। विनयपत्रिका में तुलसी ने भी अपने भावों और उनकी अभिव्यक्ति को सुन्दर रूप देने के लिए अलंकारों का पर्याप्त प्रयोग किया है। अलंकार के शब्दगत एवं अर्थगत—दोनों ही भेदों को उनके काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। दोनों पर समान अधिकार प्रतीत होता है। विशेषता यह

है कि कहीं भी तुलसी ने अलंकारों का प्रयोग भावों को गौण बनाकर नहीं किया। सर्वत्र उनकी भाव-व्यंजना के साथ सहज रूप में जो अलंकार आ गए हैं, उन्हीं से उन्होंने काम चलाया है। कुछ अलंकारों पर उनका असाधारण अधिकार प्रतीत होता है। शब्दालंकार की तो विनयपत्रिका में इतनी बहुलता है कि कहीं से भी कोई भी पंक्ति उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत की जा सकती है। यहाँ हम शब्दालंकार और अर्थालंकार—दोनों की समीक्षा करके विनयपत्रिका की अलंकार-योजना को स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे; यथा—

शब्दालंकार

तुलसी ने विनयपत्रिका में अनुप्रास शब्दालंकार अत्यधिक मात्रा मे प्रयोग किया है। छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास तथा लाटानुप्रास के अनेक उदाहरण विनयपत्रिका में भरे पड़े हैं; कुछ उदाहरण देखिए—

(क) कुलिस कुन्द कुड्मल, दामिनि-दुति दसनन देति सजाई।
नासा नयन कपोल ललित श्रुति कुण्डल भ्रू मोहि भाई।
कुंचित कच सिर मुकुट भाल पर तिलक कहौं समुझाई।
× × ×
सत सारदा सेष श्रुति मिलिकै शोभा कहि न सिराई।

इन पंक्तियों में गहरा काला अंश अनुप्रास की छटा छिटका रहा है।

(ख) दीनबन्धु दीनता दारिद-दीह दोष-दुख,
दारुन-दुसह - दर - दरप हरन।

इन पंक्तियों मे 'द' वर्ण की आवृत्ति दर्शनीय है।

(ग) मोह जनित मल लाग बिबिध बिधि,
कोटिहु जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास-निरत चित,
अधिक अधिक लपटाई।
नयन मलिन पर नारि निरखि,
मन मलिन विषय सँग लागे।
हृदय मलिन वासना - मान - मद,
जीव सहज सुख त्यागे।

इन पंक्तियों में गहरे काले शब्दों में लाटानुप्रास का सौन्दर्य द्रष्टव्य है।

अर्थालंकार

तुलसी ने साधर्म्यमूलक तथा विरोधमूलक अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, भ्रान्तिमान, उल्लेख, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति आदि अलकारों का प्रयोग उन्होंने पूर्णतः स्वाभाविक रूप में किया है। कहीं भी उनकी भाव-व्यजना या भाषा पर उनकी अलकार-योजना का कुप्रभाव नही पडा है।

यहाँ सक्षेप मे हम कतिपय उदाहरण देकर उनके अर्थालंकारों का सौन्दर्य व्यक्त करने की चेष्टा करेंगे।

सबसे पहले उपमालकार के कतिपय उदाहरण लीजिए—

(अ) स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजरा को सो।
टोटक औचट उलटि न हेरो।

(ब) तरु कोटर में बस बिहँग तरु काटे मरै न जैसे।

(स) राम कबहुँ प्रिय लागि हौ, जैसे नीर मीन को।

(द) धुआँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे।

रूपकालकार के भी कई सुन्दर उदाहरण मिलते हैं; यथा—

(क) सुचि अवनि सुहावनि आल-बाल।
कानन विचित्र बारी बिसाल।
बर बारि विषम नर नारि नीच।

(ख) श्रीहरि, गुरु-पद कमल भजहु मन तजि अभिमान।

(ग) बाँस पुरान साज सब अटखट सरस तिकोन खटोला रे।

× × ×

विषम कहार मार-मदमाते चलहिं न पाँव बहोरा रे।

उल्लेख अलकार का प्रयोग तुलसी ने निम्नांकित पंक्तियों में किया है—

जेहि कर-कमल कठोर सम्भु धनु भजि जनक-संसय मेट्यो।
जेहि कर-कमल उठाइ बन्धु ज्यों परम प्रीति केवट भेंट्यो॥
जेहि कर-कमल कृपालु गीध कहँ पिण्ड देइ निज धाम दियो।
जेहि कर-कमल बिदारि दास हित, कपि कुलपति सुग्रीव कियो॥
आयो सरन सभीत बिभीषन, जेहि कर-कमल तिलक कीन्हों।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति अभय दान देवन्ह दीन्हों॥

दृष्टान्त अलंकार के कई सुन्दर उदाहरण विनयपत्रिका में मिलते हैं। इस अलंकार की जाति के अन्य अलंकार हैं— उदाहरण, प्रतिवस्तूपमा एवं अर्थान्तरन्यास। तुलसी ने इन चारों ही अलंकारों का उपदेश तथा उद्बोधन के लिए स्थान स्थान पर प्रयोग किया है। उदाहरण, दृष्टान्त और अर्थान्तर-न्यास के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं—

(१) मेरो मन हरि हठ न तजै।
निसि दिन नाथ देउँ सिख बहु बिधि करत सुभाव निजै।
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै।
लोलुप भ्रमत गृह पसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै।

(२) ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि रामभगति सुर सरिता आस करत ओस कन की।।
धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न बारि पुनि हानि होत लोचन की।।

(३) माधव, मोह फाँस क्यों टूटै।
बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यन्तर ग्रन्थि न छूटै।।
घृत पूरन कराह अन्तरगत ससि प्रतिबिम्ब दिखावै।
ईंधन अनल लगाइ कलप सत औटत नास न पावै।।
तरु कोटर महँ बस बिहंग तरु काटे मरै न जैसे।
साधन करिय बिचार-हीन, मन सुद्ध होइ नहिं तैसे।।

(४) जैसो हौं तैसो हौं राम रावरो जन जनि परिहरिये।
कृपा सिन्धु कोसल धनी सरनागत पालक
ढरनि आपनी ढरिये।

× × ×

जग हँसि है मेरे संग्रहे कत एहि डर डरिए?
कपि केवट कीन्हे सखा जेहि सील सरल चित
तेहि सुभाव अनुसरिए।
टूटियो बाँह गरे परै, फूटेहुँ बिलोचन
परि होत हित करिए।

भ्रान्तिमान अलंकार "खायो जेवरी को सांप रे" जैसी पंक्तियों में मिल जाता है। "तुव पद-विमुख न पार पाउ कोउ" कहकर उन्होंने तुल्ययोगिता की योजना की है। प्रतीप अलंकार के उदाहरण में निम्नांकित पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं—

विसद, किसोर, पीन, सुन्दर, बपु, स्याम सुरुचि अधिकाई।
नीलकंज बारिद तमाल मनि इन्ह तनु ते दुति पाई॥

उत्प्रेक्षा अलंकार का भी एक सुन्दर उदाहरण लीजिए—

मृदुल चरन सुभ चिन्ह पदज नख अति अद्भुत उपमाई।
अरुन नील पाथोज-प्रसव जनु मनि जुत दल-समुदाई॥
जात-रूप मनि जटित मनोहर नूपुर जन-सुखदाई।
जनु हर-उर हरि बिबिध रूप धरि रहे बर भवन बनाई॥
कटि तट रटति चारु किंकिन रव अनुपम बरन न जाई।
हेम जलज-कल कलित मध्य जनु मधुकर मुखर सुहाई॥
गज-मनिमाल बीच भ्राजत कहि जाति न पदक निकाई।
जनु उडुगन-मण्डल बारिद पर, नव-ग्रह रची अथाई॥

इन प्रमुख अलंकारों के अतिरिक्त विनयपत्रिका में अन्य अलंकारों के उदाहरण भी पर्याप्त रूप में मिलते हैं; यथा—

(क) संदेह संकर—निर्मल पीत दुकूल अनूपम उपमा हिय न समाई।
बहु मनिजुत गिरि-नील-सिखर पर कनक बसन रुचिराई।

(ख) विभावना—शून्य भीत पर चित्र रंग नहिं,
तनु बिनु लिखा चितेरे।
× × ×
रवि कर नीर बसै अति दारुन,
मकर रूप तेहि माहीं।
बदन हीन सो ग्रसै चराचर,
पान करन जे जाहीं।

(ग) प्रत्यनीक—रामराज न चले मानस मलिन के छल छाम।
कोप तेहि कलिकाल कायर मुएहि घालत घाम॥
सेत केहरि को बयर ज्यों भेक हरि गोमाय।
त्योंहि राम गुलाम जानि निकाम देत कुदाय॥

(घ) चपलातिशयोक्ति—तेरो नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि विनयपत्रिका मे तुलसीदास ने विभिन्न शब्दालकारो एव अर्थालकारो का प्रयोग किया है। उनकी भावव्यजना मे अलकारो के स्वाभाविक प्रयोग से जो चमत्कार पैदा हो गया है, वह वस्तुतः उन जैसे महाकाव्य की ही प्रतिभा का काम है। विषय को बोधगम्य बनाने मे उनकी अलकार-योजना पर्याप्त सहायक सिद्ध हुई है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास आदि अलकार पर तो विनयपत्रिका के कवि का असाधारण अधिकार प्रतीत होता है। शब्दालकारों मे अनुप्रास से कवि को अधिक प्रेम रहा है।

प्रश्न २१—गीत-परम्परा का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हुए विनयपत्रिका का उसमे स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर—सगीतात्मक छन्द को गीत कहा जाता है। काव्य मे सगीत का समावेश हृदय के भावो की मधुरतम अभिव्यक्ति के साथ होता है। अतः अनुभूति का कोमलता के साथ भाषा की सुकुमारता भी उसका अनिवार्य अग बन जाती है। यही कारण है कि काव्य का सर्वोत्कृष्ट रूप 'गीत' माना जाता है। पाठक के हृदय को भावावेश मे लाने की सर्वाधिक शक्ति गीत मे होती है। उसमे हृदय अनुभूति के माधुर्य की परिधि पर घूमकर केन्द्राभिमुखी हो जाता है। अतः गीत का आकार भी लघु होता है। शब्द-चयन, भावाभिव्यक्ति एवं छन्द-योजना के क्षेत्रो मे गीत की कुछ मर्यादाएँ होती हैं। इन मर्यादाओ मे बंधकर जब कवि की वाणी मुखर होती है, तभी गीत का जन्म होता है।

भारतीय साहित्य मे गीत की परम्परा बहुत प्राचीन है। आर्यों के आदि-साहित्य 'वेदो' मे ही 'गीत' का उद्भव माना जाता है। सामवेद गान-विद्या का ही वेद है। ऋग्वेद आदि की ऋचाएं भी गेयता के गुण से युक्त हैं। सस्कृत-साहित्य मे महर्षि वाल्मीकि के पश्चात् गीतो की एक दीर्घ परम्परा मिलती है। प्राकृत आदि भाषाओ ने जब साहित्य को लोक-जीवन के निकट प्रस्तुत किया तब लोकगीतों की परम्परा भी उद्भूत हुई, जो अब तक चली आ रही है। नाटको की परम्परा सस्कृत मे बहुत पुरानी है। उनमे भी गीतो को स्थान मिला है। कालिदास आदि श्रेष्ठ कवियो के काव्य एव नाटक गीत-तत्व से युक्त मिलते है। जयदेव की 'गीत गोविन्द' सस्कृत की गीत-काव्य सम्बन्धी अत्यधिक लोकप्रिय पुस्तक है, जिसने हिन्दी मे विद्यापति जैसे गीतकारो को

जन्म दिया। हिन्दी का भक्तिकाल गीत-तत्त्व को स्वीकार करने मे सबसे आगे रहा। हम इस काल के सभी प्रमुख कवियो की रचनाओ मे गीत-तत्त्व का विकास देखते हैं। सूर और मीरा इस काल के सबसे अधिक मधुर गायक माने जाते है। तुलसी भी अपने युग की इस गीतोन्मुखी प्रवृत्ति की उपेक्षा नहीं कर सके। उनकी 'गीतावली, 'कृष्ण-गीतावली' तथा 'विनयपत्रिका' आदि रचनाएँ इस बात का अटल प्रमाण हैं।

तुलसीदास के परवर्ती कवियो ने भी गीत-परम्परा का क्रम नहीं तोड़ा। रीतिकाल मे देव, पदमाकर, सेनापति आदि कवियों के कवित्त-सवैये स्फुट रूप मे उसी प्रवृत्ति का फल है, यद्यपि ये कवि अपने युग की कतिपय अन्य प्रवृत्तियो के कारण गेय पदों की रचना करने के लिए अधिक उत्साहित नही हुए। आधुनिक युग मे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से ही उस परम्परा का पोषण प्रारम्भ हुआ और छायावादी युग मे आकर वह खूब फूली-फली। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा आदि छायावादी कवियो के अतिरिक्त माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान आदि ने भी गीत लिखे। आजकल भी हमे उस परम्परा का अन्त दिखाई नही देता। अनेक कवि सुन्दर तथा सरस गीतो की रचना करने मे व्यस्त हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि वीरगाथा काल से आज तक अटूट रूप मे चली आती हुई इस गीत-परम्परा में विनयपत्रिका का क्या स्थान है।

विनयपत्रिका तुलसीदास की एक श्रेष्ठ, भाव-पूर्ण मुक्तक काव्य-कृति है। इस काव्य मे उन्होने 'पद' की शैली का प्रयोग किया है। मध्य-युगीन हिन्दी-साहित्य में इस शैली का प्रयोग कई कवियो ने किया है। अष्टछाप के सभी कवियों की रचनाएँ पद-शैली में ही मिलती हैं। मीरा का बृहत् काव्य भी पदो में ही लिखा गया है। कबीर ने भी पदों में ही अपने सरस भाव व्यक्त किए है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, तुलसी ने पदो की शैली में गीतावली, कृष्ण-गीतावली एव विनयपत्रिका नामक तीन बड़े ग्रन्थों की रचना की है। गीतावली और कृष्ण-गीतावली में भी सरस पदो को स्थान मिला है, किन्तु विनयपत्रिका के पद उनकी सरसता से भिन्न-भिन्न कोटि की सरसता रखते हैं। उनमें गीतावली या कृष्ण-गीतावली की तरह राम या कृष्ण के चरित्रों को प्रधानता नही दी गई। मीरा ने अपने पदो में अपनी विरह-व्यथा की विस्तार से व्यजना की है। विनयपत्रिका में उस प्रकार की विरह-व्यजना की भी कोई

स्थान नहीं मिला। कबीर के समान घट के भीतर की बात भी तुलसी ने विनयपत्रिका के पदो में नहीं बताई। उसमें उनका भक्त-हृदय मुखर हुआ है। सूर ने अपने विशाल ग्रन्थ 'सूरसागर' की रचना भी पदों में की है किन्तु वे भी उसमें कृष्ण-चरित्र के अवगाहन में लगे रहे हैं। पर विनय-सम्बन्धी पदों का भी उसमें अभाव नहीं है और सूर के उन्हीं पदो से तुलसी की विनयपत्रिका से तुलना की जा सकती है। तुलसी के पूर्व या पश्चात् उनके समान क्रमबद्ध तथा सुनियोजित रूप में विनयपत्रिका की सी रचना पद शैली में किसी अन्य कवि ने नहीं की। सूर के विनय सम्बन्धी पदों का भी विनयपत्रिका के पदो की तुलना में अधिक महत्त्व नहीं है।

अतः यह निश्चित हो जाने पर कि पद-शैली में लिखित विनय-साहित्य में तुलसी की विनयपत्रिका ही एकमात्र चमकता हुआ अद्भुत नक्षत्र है, हमे उसके गीत-तत्त्व की परख करके उसके गीत-परम्परान्तर्गत विचारणीय मूर्धन्य स्थान का स्वरूप स्पष्ट कर देना चाहिए।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, छन्द मे सगीत का समावेश होने पर ही गीतिकाव्य का जन्म होता है। अतः देखना यह है कि तुलसी ने विनयपत्रिका मे जिस छन्द का प्रयोग किया है, उसमे सगीत का समावेश किस सीमा तक हुआ है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए हम विनयपत्रिका के पदो की परख यह देखकर कर सकते हैं कि उसमे ऐसे पद कितने है, जिन्हें वाद्य-यन्त्रों के साथ गाया जा सके। वाद्य-यन्त्रो पर कोई छन्द गाया जा सकता है या नहीं, इसका निराकरण इस बात से हो जाता है कि वह छन्द राग-रागिनी के आधार पर लिखा गया है तो वह गाया जा सकता है, अन्यथा नहीं गाया जा सकता। अब देखना यह है कि विनयपत्रिका के कितने पदो मे राग-रागनियो का प्रयोग हुआ है।

हम देखते हैं कि तुलसी ने लगभग सभी पदो की रचना किसी-न-किसी राग-रागिनी मे की है। कुछ उदाहरण इस सम्बन्ध मे पर्याप्त होगे। निम्नाङ्कित पद मे असावरी राग मिलता है—

> इहै परम फलु परम बड़ाई।
> नखसिख रुचिर बिन्दुमाधव-छवि निरखहिं नयन अघाई॥
> बिसद, किसोर, पीन, सुन्दर बपु, स्याम सुरुचि अधिकाई।
> नीलकज, बारिद तमाल मनि, इन्ह तन ते दुति पाई॥

मृदुल चरन सुभ चिन्ह, पदज नख अति अद्‌भुत उपमाई।
× × × —आदि।

निम्नांकित पद भैरवी राग में गाया जा सकता है—

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अरु ही ते॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप, बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते॥ आदि।
× × ×

अब केदार राग का भी एक सुन्दर उदाहरण देखिए—

कबहुँक अंब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ॥
दीन सब अंगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी दास कहाइ॥
बूझिहैं 'सो है कौन', कहिबी नाम दसा जनाइ॥
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥
जानकी जगजननि जन की किये बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव-नाथ गुनगन गाइ॥

इसी प्रकार विनयपत्रिका के अन्य पदों को भी विभिन्न रागों में विभाजित किया जा सकता है। इनमें समस्त विनयपत्रिका के पदों में कल्याण, कान्हरा, गौरी, धनाश्री, मलार, रामकली, टोड़ी, मारू, बिलावल आदि अनेक राग मिलते हैं। इस प्रकार समस्त विनयपत्रिका संगीत की तुला पर तुल जाती है। हम उसके सभी पदों को वाद्ययन्त्रों पर सरलता से गा सकते हैं।

एक बात और ध्यान देने की यह है कि तुलसी ने बड़ी सफलता से विभिन्न रागों में अपने भावों को व्यक्त किया है। रागानुकूल भाव-व्यञ्जना ही इस बात का प्रमाण है कि तुलसी विनयपत्रिका को एक सफल व श्रेष्ठ गीति-काव्य का रूप देने में सबसे अधिक सफल सिद्ध हुए हैं। उदाहरणार्थ उन्होंने अपने करुण-भाव को मलार, असावरी, केदार, सारंग, जयतिश्री आदि रागों में व्यक्त किया है—उद्वेग भावना की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने प्रायः भैरवी, धनाश्री तथा भैरव आदि रागों को अपनाया है; शरण-भावना की अभिव्यक्ति ललित,

सारग आदि रागों मे की है तथा दण्डक, टोड़ी, रामकली आदि रागों में उन्होंने वर्णनों को स्थान दिया है। यह सब होते हुए भी कही भी विनयपत्रिका में राग-रागिनी का भार भाव को आक्रान्त करता दिखाई नहीं देता। सर्वत्र सरल, सरस तथा सुकुमार शब्दावली में सरस एव कोमल भावो की व्यंजना हुई है तथा जहाँ कर्कश वर्णों की आवश्यकता हुई है, वहाँ तुलसी ने उनकी भी अपेक्षा नही की है। हम विनयपत्रिका के पदो को गाते-गाते केवल सगीत मे ही तन्मय नहीं होते, अपितु कवि के भाव में सबसे अधिक निमग्न होते हैं। कवि के हृदय मे भाव जिस क्रम से उद्बुद्ध होकर पदो में आए हैं, उसी क्रम से हम भी उनमे अवगाहन करने लगते हैं। यही कारण है कि भावना की तीव्रता प्रथम पंक्ति के पश्चात् उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है और अन्त मे उसमे क्रमशः उतार आता जाता है। विनयपत्रिका का कोई भी पद इस दृष्टि से परखा जा सकता है।

अतः यह निष्कर्ष सहज ही प्राप्त किया जा सकता है कि गीति-काव्य की परम्परा मे गीति-तत्त्व की दृष्टि से तुलसी की विनयपत्रिका का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। हम उसमे भाव एव सङ्गीत का अद्भुत सामजस्य पाते हैं। तुलसी के पूर्ववर्ती या परवर्ती किसी भी अन्य कवि ने स्वानुभूति की व्यजना के लिए पद-शैली मे ऐसा सामजस्य उपस्थित नही किया।

प्रश्न २२—"विनयपत्रिका तुलसी के वाक्-चातुर्य एव उक्ति-वैचित्र्य का अद्भुत नमूना है।" इस कथन का विस्तार से विवेचन कीजिये।

उत्तर—कवि और साधारण मनुष्य मे सबसे बड़ा अन्तर यह होता है कि कवि उसी बात को, जिसे साधारण मनुष्य सामान्य भाषा मे कहता है, ऐसे चमत्कार के साथ कहता है, जिससे सुनने वाला तुरन्त प्रभावित हो जाता है। किसी भी बात को प्रभावशाली बनाने के लिए भाषा-सम्बन्धी कुशलता तो अपेक्षित है ही, साथ ही हृदय के मर्म को पहचानने की एक विशेष योग्यता भी आवश्यक है। जो कवि यह जानता है कि कौन-सी बात किससे, किस समय किस प्रकार तथा कैसे शब्दो मे कहनी चाहिए, वही कवि वाक्-चातुर्य एव उक्ति-वैचित्र्य मे दक्षता प्राप्त कर सकता है। ऐसा करने के लिए मानव-हृदय का बहुत गम्भीर और विस्तृत ज्ञान अपेक्षित है। तुलसी मे वह ज्ञान और अनुभव था। अतः वे विनयपत्रिका में अपना अद्भुत वाक्-चातुर्य एवं उक्ति-वैचित्र्य दिखाने मे सफल हुए हैं।

वाक्-चातुर्य

तुलसी का विनयपत्रिका लिखने में मुख्य उद्देश्य है—राम की भक्ति प्राप्त करना। वे ऐसा करने के लिए विनयपत्रिका के रूप में अपने उपास्य राम की शरण में पहुँचकर जो कुछ कहना चाहते हैं, उसे उन्होंने अत्यधिक वाक्-चातुर्य एवं उक्ति-वैचित्र्य के साथ प्रस्तुत किया है।

सबसे पहले हमारा ध्यान विनयपत्रिका के प्रारम्भिक पदों की ओर जाता है। तुलसी को यह ज्ञात था कि सिद्धि के दाता गणेश हैं। अतः अगर राम की शरण में पहुँचकर भक्ति का लाभ प्राप्त करना है, तो गणेश की सबसे पहले वन्दना होनी चाहिए। यही सोचकर वे प्रथम पद में गणेश-स्तुति करते हैं। उस स्तुति में ही उनका वाक्-चातुर्य प्रकट हो जाता है; देखिये, वे कहते हैं—

> गाइये गनपति जगबन्दन।
> संकर - सुवन - भवानी - नन्दन ॥
> सिद्धि-सदन, गजबदन, बिनायक।
> कृपा-सिंधु सुन्दर सब लायक ॥
> मोदक - प्रिय मुद-मंगल - दाता।
> बिद्या-बारिधि, बुद्धि-बिधाता ॥
> माँगत तुलसिदास कर जोरे।
> बसहिं रामसिय मानस मोरे ॥

इस पद में तुलसीदास ने गणेश से सिद्धि प्राप्त करने के लिये उनकी प्रशंसा की है। यह उनकी वाक्-चातुरी का ही प्रमाण है। हम जिससे कुछ लेना चाहते हैं, उसे प्रसन्न करके ही ले सकते हैं और प्रसन्न करने का सीधा सा उपाय है, उसकी प्रशंसा कर देना; क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि प्रशंसा में किसी को प्रसन्न कर सकने की अपार क्षमता निहित होती है। तुलसी ने भी गणेश को 'सिद्धि-सदन', 'कृपा-सिन्धु', 'सब लायक' आदि विशेषण देकर उसी मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ का परिचय दिया है। उनका यह कार्य वाक्-चातुरी की ही सीमा में आता है। 'राम और सीता' के प्रति अपनी अनन्य भक्ति का परिचय भी उन्होंने कितनी चतुराई से दिया है, यह उपर्युक्त पंक्तियों में देखते ही बनता है। वे स्तुति तो गणेश की कर रहे हैं और

भक्ति 'राम-सीता' को माँग रहे हैं। क्या यह कुछ कम वाक्-चातुर्य की बात है।

आगे शिवजी की स्तुति करते हुए वे पुनः उसी वाक्-चातुर्य का परिचय देते हैं—

देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे।
किये दूर दुख सबनि के, जिन जिन कर जोरे॥
सेवा सुमिरन पूजिबो, पात आखत थोरे।
दियो जगत जहँ लगि सबै, सुख, गज, रथ, घोरे॥
गाँव बसत बामदेव, मैं कबहूँ न निहोरे।
अधि-भौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे॥
बेगि बोलि बलि बरजिये, करतूति कठोरे।
तुलसी दल रूँध्यो चहैं, सठ साखि सिहोरे॥

इस पद में भी उनका वही वाक्-चातुर्य व्यक्त हुआ है। प्रथम पंक्ति इस सम्बन्ध में विशेष ध्यान देने योग्य है।

वाक्-चातुर्य का सबसे सुन्दर प्रमाण तुलसी का सीता-स्तुति सम्बन्धी निम्नांकित पद है—

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ॥
दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ॥
बूझि हैं 'सो है कौन', कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥
जानकी जगजननि जन की किये बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव-नाथ-गुनगन गाइ॥

कितनी चतुरता से इन पंक्तियों में तुलसीदास ने सीताजी को 'माता' सम्बोधन के साथ राम से अपना उद्धार कराने का उपाय बतलाया है। भला अब भी क्या वे राम तक तुलसी की प्रार्थना नहीं पहुँचायेंगी?

यहीं तक नहीं, तुलसीदास ने बड़ी चतुरता से सीता जी के सामने राम की भी प्रशंसा की है, ताकि सीता जी अपने पति की प्रशंसा सुनकर उन पर

प्रसन्न हो जायँ। निम्नांकित पंक्तियों में उनका यह अद्भुत वाक्-चातुर्य द्रष्टव्य है—

कबहुँ समय सुधि द्याइबी मेरी मातु जानकी।
जन कहाइ नाम लेत हौं, किये पन चातक ज्यों,
प्यास प्रेम-पान की॥
सरल प्रकृति आपु जानिए करुनानिधान की।
निजगुन अरिकृत अनहितौ दास-दोष,
सुरति चित रहत न दिये दान की॥
बानि बिसारनसील है मानद अमान की।
तुलसीदास न बिसारिये मन क्रम बचन जाके,
सपनेहुँ गति न आन की॥

जिससे कृपा की याचना की जाय—उसको प्रसन्न करने के लिए उसकी प्रशंसा की जाय; केवल यहीं तक तुलसी का वाक्-चातुर्य सीमित नहीं है। वे यह भी जानते हैं कि देने वाला लेने वाले पर अपना प्रभाव भी जमाना चाहता है। अत: यदि पहिले से ही अपनी हीनता स्वीकार कर ली जाय तो जल्दी काम बन सकता है। यही सोचकर तुलसी ने अपनी हीनता की अनेक बार चर्चा की है, जो उनकी वाक्-चातुरी का ही प्रमाण है; यथा—हनुमान जी का प्रभाव स्वीकार कर अपनी हीनता दिखाते हुए वे कहते हैं—

साँई तोको माँगि मैं तेरो नाम लिया रे।
तेरे बल, बलि आजु लौं जग जागि जिया रे॥
जो तोसों होतो फिरौं मेरो हेतु हिया रे।
तौ क्यों बदन देखावतो कहि बचन इया रे॥
तोसो ग्यान-निधान को सर्बग्य बिया रे।
हौं समुझत साईं-द्रोह की गति छार छिया रे॥
तेरे स्वामी राम से, स्वामिनी सिया रे।
तहँ तुलसी के कौन को काको तकिया रे॥

एक के बदले भी उन्होंने अनेक बार अपनी हीनता इसी अद्भुत वाक्-चातुर्य के साथ व्यक्त की है। एक उदाहरण देखिए—

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि हौं, भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज-हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो?
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो॥

इतना होने पर भी हो सकता है कि राम उनसे प्रसन्न न हों और अपनी शरण मे न लें, इसलिए वे अद्‌भुत वाक्-पटुता का परिचय देते हुए पहले ही यह बता देते हैं कि हे राम! मेरे लिए तुम्हारे अलावा अन्य कोई शरण नहीं है। मैं तुमसे भी न कहूँ तो किससे कहूँ?

तुम तजि हौं कासों कहौं, और को हितू मेरे?
दीनबंधु! सेवक सखा आरत अनाथ पर
सहज छोह केहि केरे॥

और भी—

जाऊँ कहाँ, ठौर है कहाँ देव! दुखित दीन को?
को कृपालु स्वामी सारिखो राखै सरनागत
सब अंग बल-विहीन को।

राम शायद यह कहकर उन्हें अपने द्वार से भगा दें कि तू बड़ा पापी है, शरण देने के योग्य नहीं, इसलिए तुलसी उन्हें पहले से ही यह बता देते हैं कि हे राम! तुमने बड़े-बड़े पापियों का उद्धार किया है और तुम्हारा वह विरद सुनकर ही मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। मैं यह भली-भाँति जानता हूँ कि मैंने पाप किए हैं, पर यह भी तो जानता हूँ कि तुम जैसे समर्थ से उसका उल्लेख कर देने पर सहज में सुख-लाभ कर सकूँगा। वे यह बात किस वाक्-चातुर्य के साथ कहते हैं—

कह्यो न परत, बिनु कहे न रह्यो परत,
बड़ो सुख कहत बड़े सो, बलि, दीनता।
प्रभु की बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी,
प्रभु की पुनीतता, आपनी पाप-पीनता।
× × ×
गीध सिला, सबरी की सुधि सब दिन किये।
होइगी न साईं सों सनेह-हित-हीनता॥
× × ×

तथा—

ब्याध चित दै चरन मार्‌यो मूढ़ मति मृग जानि।
सो सनेह स्वलोक पठयो प्रगट करि निज बानि॥
कौन तिन्ह को कहै जिन्ह के सुकृत अरु अघ दोउ।
प्रगट पातक रूप तुलसी सरन राख्यो सोउ॥

कितनी चतुराई के साथ वे स्वयं ही कह देते हैं कि 'तुलसी' जैसे 'प्रकट पातकी' से भी क्या अब राम यह कहने का साहस कर सकते हैं कि तुलसी तुम मेरे द्वार से चले जाओ, मैं तुम्हें अपनी शरण में नहीं लेना चाहता?

किसी के पीछे पड़ जाने के लिए जिस चमत्कारिक वाक्-पटुता की आवश्यकता होती है, यह तुलसी की निम्नांकित पंक्तियों से प्रकट है; वे कहते हैं—

✓ खोटो खरो रावरो हौं, रावरे सों झूठ क्यों कहौंगो,
जानो सबही के मन की।
करम वचन हिये कहौं न कपट किये,
ऐसी हठ जैसी गाँठ पानी परे, सन की॥

कहीं राम उन्हें फटकार न दें कि तुमने पाप क्यों किए, इसका रास्ता तुलसी पहले से ही अपने मन के सम्बन्ध में यह कहकर बन्द कर देते हैं कि—

मेरो मन हरिजू ! हठ न तजै।
निसदिन नाथ ! देउँ सिख बहु विधि, करत सुभाउ निजै॥
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै॥
लोलुप भ्रमत गृहपसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै।
तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै॥
हौं हार्‌यो करि-जतन विविध अतिसै प्रबल अजै।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै॥

प्रथम तथा अन्तिम पंक्ति में तुलसी की समस्त वाक्-चातुरी का रहस्य छिपा हुआ है। विनयपत्रिका में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है।

उक्ति-वैचित्र्य

तुलसी ने वाक्-चातुर्य को कहीं-कहीं इतना अधिक ऊँचा उठा दिया है कि

कहु केहि कहिय कृपानिधे ! भव-जनित बिपति अति ।

× × ×

तुलसीदास कहँ आस यहै बहु पतित उधारे ।

निम्नांकित पंक्तियाँ भी लाक्षणिक उक्ति का एक अच्छा उदाहरण हैं—

दूरि कीजे द्वारतें लबार लालची प्रपंची,

सुधा-सो सलिल सूकरी ज्यों गहडोरियो ।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर सरलता से पहुँच जाते हैं कि तुलसीदास ने विनयपत्रिका में वाग्-चातुर्य एवं उक्ति-वैचित्र्य द्वारा अपने भावों को अत्यन्त आकर्षक ढंग से व्यक्त किया है। इनकी भाषा में इन दोनों गुणों के कारण पर्याप्त रोचकता आ गई है तथा अभिव्यक्ति को भी पर्याप्त सशक्तता प्राप्त हुई है।

प्रश्न २१—'विनयपत्रिका' में गोस्वामी जी ने अपनी हीनता और आतुरता का राग सर्वत्र अलापा है। क्या इस ग्रन्थ को आत्म-चरित्र-प्रधान कहा जा सकता है ? यदि नहीं, तो इस रहस्य का उद्घाटन कीजिए।

उत्तर—कवि की अनुभूति में समाज का हृदय होता है। वह अपने जीवन में जो कुछ अनुभव करता है, उसी को प्राय: वह काव्य की वाणी प्रदान करता है। वह समाज का एक विशिष्ट प्राणी होता है। सामाजिक जीव उसको अपने अनुभवों की सम्पत्ति सौंपते हैं। इसलिए वह जो लिखता है, उसमें केवल उसी के सुख-दुख साकार नहीं होते, अपितु समाज की विभिन्न अनुभूतियाँ भी उसकी वाणी बन जाती हैं। इस दृष्टि से किसी भी कवि की कला-कृति के भावों को न तो केवल उसके वैयक्तिक जीवन की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है और न वैयक्तिकता-निरपेक्ष सामाजिक अनुभव-मात्र। महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की विनयपत्रिका के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। इसमें तुलसी ने अपनी हीनता और आतुरता का राग सर्वत्र अलापा है, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि उन्होंने अपना आत्म-चरित्र लिखने के लिए ऐसा किया है, और न यही कहा जा सकता है कि उसमें उनके आत्म-चरित्र का पूर्ण उल्लेख है। वस्तुत: हम विनयपत्रिका में प्रारम्भ से अन्त तक तुलसी को अपनी हीनता और आतुरता का वर्णन करते पाते हैं, किन्तु यह हीनता एवं आतुरता तत्कालीन समाज का भी स्वर बन गई है; यथा—

उनमें अपार विचित्रता का दर्शन होता है। हमें अनेक ऐसी उक्तियाँ विनय-पत्रिका में मिलती हैं, जिनमें अभिव्यक्ति का पर्याप्त वैचित्र्य पाया जाता है; उदाहरणार्थ—जब वे कहते हैं कि—

तो हौं बार-बार प्रभुहि पुकारि कै खिझावतो न
जो पै मोको होतो कहूँ ठाकुर-ठहरु।

तब उनका उक्ति-वैचित्र्य स्पष्टतः सामने आ जाता है। वे यह कहकर कि 'हे राम ! यदि मुझे कोई अन्य स्वामी या स्थान शरण के लिए मिल जाता तो मैं बार-बार आपको पुकार कर परेशान न करता !' क्या सुन्दर चमत्कारिक उक्ति है यह ! वे सीधी यह बात न कहकर कि मैं तुम्हें कब से पुकार रहा हूँ, किन्तु तुम्हारे कान पर जूँ भी नहीं रेंगती—उपर्युक्त विचित्र कथन का प्रयोग करते हैं। यहीं तक नहीं, उन्हें स्वामी की बात के बिगड़ने-बनने का भी पर्याप्त ध्यान है, यह बात वे किस वैचित्र्य के साथ कहते हैं—

कहौं बलि बेद की न लोक कहा कहैगो ?

इसमें उक्ति-वैचित्र्य इसलिए है, क्योंकि वास्तव में उन्हें चिन्ता तो अपने उद्धार की है, पर वे कह रहे हैं कि मुझे तो केवल स्वामी के यश-अपयश की ही चिन्ता है। इसी प्रकार राम को 'अनाथपति' की संज्ञा किस 'अहसान' के साथ वे दे रहे हैं, यह निम्नांकित पंक्तियों में देखिए—

हौं सनाथ ह्वै हौं सही तुम हू अनाथपति,
जो लघुतहि न भितै हो।

तुलसी की उक्ति-सम्बन्धी विचित्रता का इन पंक्तियों में भी स्पष्ट दर्शन होता है—

प्रगट कहत जो सकुचाए अपराध भर्‌यो हौं।
तौ मन में अपनाइए तुलसिहिं कृपा करि कलि बिलोकि हर्‌यो हौं॥

लाक्षणिक पदावली के साथ वे अपनी उक्ति-सम्बन्धी विचित्रता प्रकट करते हुए कहते हैं—

तुलसी कही है साँची रेख बार-बार खाँची,
ढील किये नाम-महिमा की नाव बोरिहौं।

व्यंजनात्मक पदावली के साथ तुलसी ने उक्ति-वैचित्र्य का उदाहरण निम्नांकित पंक्तियों में प्रस्तुत किया है—

कहु केहि कहिय कृपानिधे ! भव-जनित विपति अति ।

× × ×

तुलसीदास कहुँ आस यहै बहु पतित उधारे ।

निम्नांकित पंक्तियाँ भी लाक्षणिक उक्ति का एक अच्छा उदाहरण हैं—

दूरि कीजै द्वारतें लबार लालची प्रपंची,

सुधा-सो सलिल सूकरी ज्यों गहडोरियो ।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर सरलता से पहुँच जाते हैं कि तुलसीदास ने विनयपत्रिका में वाक्-चातुर्य एवं उक्ति-वैचित्र्य द्वारा अपने भावों को अत्यन्त आकर्षक ढंग से व्यक्त किया है। इनकी भाषा में इन दोनों गुणों के कारण पर्याप्त रोचकता आ गई है तथा अभिव्यक्ति को भी पर्याप्त सशक्तता प्राप्त हुई है।

प्रश्न २३—'विनयपत्रिका' में गोस्वामी जी ने अपनी हीनता और आतुरता का राग सर्वत्र अलापा है। क्या इस ग्रन्थ को आत्म-चरित्र-प्रधान कहा जा सकता है ? यदि नहीं, तो इस रहस्य का उद्घाटन कीजिए।

उत्तर—कवि की अनुभूति में समाज का हृदय होता है। वह अपने जीवन में जो कुछ अनुभव करता है, उसी को प्रायः वह काव्य की वाणी प्रदान करता है। वह समाज का एक विशिष्ट प्राणी होता है। सामाजिक जीव उसको अपने अनुभवों की सम्पत्ति सौंपते हैं। इसलिए वह जो लिखता है, उसमें केवल उसी के सुख-दुख साकार नहीं होते, अपितु समाज की विभिन्न अनुभूतियाँ भी उसकी वाणी बन जाती हैं। इस दृष्टि से किसी भी कवि की कला-कृति के भावों को न तो केवल उसके वैयक्तिक जीवन की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है और न वैयक्तिकता-निरपेक्ष सामाजिक अनुभव-मात्र। महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की विनयपत्रिका के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। उसमें तुलसी ने अपनी हीनता और आतुरता का राग सर्वत्र अलापा है, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि उन्होंने अपना आत्म-चरित्र लिखने के लिए ऐसा किया है, और न यही कहा जा सकता है कि उसमें उनके आत्म-चरित्र का पूर्णतः अभाव है। वस्तुतः हम विनयपत्रिका में प्रारम्भ से अन्त तक तुलसी को अपनी हीनता और आतुरता का वर्णन करते पाते हैं, किन्तु यह हीनता एवं आतुरता तत्कालीन समाज का भी स्वर बन गई है; यथा—

'श्रीरामचरितमानस' जिसने लिखा था और राम-कथा का गान करता हुआ सत-समागम में समस्त जीवन व्यतीत करने वाला वह महाकवि कौन था, जिसकी वाणी अब भी भारत के वायुमण्डल में गूँज रही है? निस्सन्देह उपर्युक्त पद में तुलसी आत्म-चरित्र लिखने नहीं बैठे। उन्होंने उसमें अपनी हीनता और आतुरता-मात्र व्यक्त की है तथा समाज के उन व्यक्तियों का चित्र खींचा है, जो राम-भजन किए बिना समस्त जीवन विषय-सुख के भोग, धनार्जन आदि में व्यतीत कर देते हैं।

जो बात हम ऊपर कह आए हैं, वही बात तुलसी के निम्नांकित पद के विषय में भी कही जा सकती है, जिसमें उन्होंने पुन. लगभग वैसे ही भावनाएँ व्यक्त की हैं; वे कहते हैं—

जनम गयो बादिहिं बर बीति।
परमारथ पाले न पर्‌यो कछु, अनुदिन अधिक अनीति॥
खेलत खात लरिकपन गो चलि, जोबन जुबतिन लियो जीति।
रोग-बियोग-सोग-स्रम-संकुल बड़ि बय वृथहि अतीति॥
राग-रोष-ईर्षा-विमोह-बस रची न साधु-समीति।
कहे न सुने गुनगन रघुबर के, भइ न रामपद-प्रीति॥
हृदय दहत पछिताय-अनल अब, सुनत दुसह भवभीति।
तुलसी प्रभु तें होइ सो कीजिये समुझि बिरद की रीति॥

आगे फिर वे ऐसी ही बात कहते हैं। इसे भी हम तुलसी का आत्म-चरित वर्णन नहीं मान सकते—

ऐसेहि जनम-समूह सिराने।
प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि, सेवत चरन बिराने॥
जे जड़ जीव कुटिल कायर खल, केवल कलि मल-साने।
सूखत बदन प्रसंसत तिन्ह कहँ, हरि तें अधिक करि माने॥
सुख हित कोटि उपाय निरन्तर, करत न पाँय पिराने।
सदा मलीन पंथ के मल ज्यों, कबहुँ न हृदय थिराने॥
यह दीनता दूर करिबे को, अमित जतन उर आने।
तुलसी चित-चिंता न मिटै, बिनु चिंतामनि पहचाने॥

वास्तविकता तो यह है कि इन सब उदाहरणों में तुलसी की अपनी हीनता और आतुरता ध्वनित हो रही है तथा सांसारिक चक्र में पड़े हुए जीवों की

राम-विमुखता एवं विषयाभिरुचि अभिव्यक्त हो रही है। एक अन्य उदाहरण इस सम्बन्ध में और द्रष्टव्य है; तुलसी कहते हैं—

बाल दसा जेते पाए।
अति असीम नहिं जाहिं गिनाए॥
छुधा-ब्याधि-बाधा भइ भारी।
बेदन नहिं जानै महतारी॥
जननी न जाने पीर सो, केहि हेतु सिसु रोदन करै।
सोइ करै बिबिध उपाय, जातें अधिक तुव छाती जरै॥
कौमार सैसव अरु किसोर अपार अघ को कहि सकै।
ब्यतिरेक तोहि निरदय ! महाखल ! आन कहु को सहि सकै।

ये पंक्तियाँ इस तथ्य को स्पष्ट कर देती हैं कि तुलसी कोई विशेष बात नहीं कह रहे, वे तो एक सामान्य बात कहना चाहते हैं। वह बात तुलसी की अपनी बात नही है, अपितु जीव-मात्र की बात है। तथापि यह तो माना जा सकता है कि उनकी उस पर-वार्ता में भी उनकी स्वकीय हीनता और आतुरता की भावनाएँ तो छिपी ही हुई हैं।

कुछ आलोचकों ने निम्नांकित पंक्तियों को तुलसी की वृद्धावस्था का प्रमाण माना है और उनके आधार पर यह कहा है कि "इस प्रकार बाल्यावस्था और यौवनावस्था का निदर्शन करने के पश्चात् गोस्वामी जी अपनी वृद्धावस्था का परिचय देते हैं। बुढापे की इच्छा न करते हुए भी वह आ धमका, सारे शरीर पर छा गया, शरीर जीर्ण हो गया और रोगों का घर बन गया। सिर हिलने लगा तथा इन्द्रियों की शक्ति का ह्रास हो गया।" परन्तु ध्यान देने की बात है कि क्या ये पक्तियाँ तुलसी ने विशेष रूप से अपने लिए लिखी हैं—

बेलत ही आई बिरधाई।
जो तै सपनेहु नाहिं बुलाई॥
ताके गुन कछु कहे न जाहीं।
सो अब प्रकट देखु तनु माहीं॥
सो प्रगट तनु जरजर जराबस, ब्याधि सूल सतावई।
सिरकंप, इन्द्रिय-सक्ति प्रतिहत, बचन काहु न भावई॥

गृहपालहूतें अति निरादर, खान पान न पावई।
ऐसिहु दसा न विराग तहँ, तृष्णा-तरंग बढ़ावई ॥

इन पंक्तियों में सामान्य जीव की दशा का चित्रण है तथा तुलसी की वैयक्तिक हीनता और आतुरता उसके माध्यम से व्यक्त हो रही है। निम्नांकित पंक्तियाँ भी इसी तथ्य का समर्थन करती हैं—

काल-करम-इन्द्रिय-विषय गाहकगन घेरो।
हौं न कबूलत, बाँधिकै मोल करत करेरो ॥
बंदि-छोर तेरो नाम है, बिरुदैत बड़ेरो।
मैं कह्यो, तब छल-प्रीति कै मांगे उर डेरो ॥
नाम-ओट अब लगि बच्यो मलजुग जग जेरो।
अब गरीब जन पोषिये पाइबो न हेरो ॥
जेहि कौतुक बक स्वान को प्रभु न्याव निबेरो।
तेहि कौतुक कहिये कृपालु ! तुलसी है मेरो ॥

निम्नांकित पंक्तियों में तुलसी ने स्वयं को अनेक प्रकार के दोषों का भण्डार बताया है। हम उनके इस कथन को उनका आत्मचरित नहीं कह सकते। भक्ति के आवेश में उन्होंने इन पंक्तियों में भगवान् के निकट अपनी हीनता एवं आतुरता ही व्यक्त की है—

कैसे देउँ नाथहिं खोरि।
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि, भगति परिहरि तोरि ॥
बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि।
देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि ॥
किये सहित सनेह जे अघ, हृदय राखे चोरि।
संग-बस किये सुभ सुनाये, सकल लोक निहोरि ॥
करौं जो कछु धरौं सचिपचि सुकृत-सिला बटोरि।
पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि ॥
लोभ मनहि नचाव कपि ज्यों, गरे आसा डोरि।
बात कहौं बनाइ बुध ज्यों बर बिराग निचोरि ॥
एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत, लाज अँचई घोरि।
निलजता पर रीझि रघुबर, देहु तुलसिहिं छोरि ॥

उपर्युक्त पद में उन्होंने अपने जिन दोषों को दिखाया है, वे भी उनके

चरित के व्यञ्जक न होकर उनकी हीनता एवं आतुरता की भावना को व्यक्त करने की एक शैली-विशेष की ही सूचना देते हैं—

है प्रभु ! मेरोई सब दोसु ।
सीलसिन्धु, कृपालु, नाथ अनाथ, आरत-पोसु ।।
बेष बचन बिराग मन अघ अवगुननि को कोसु ।
राम, प्रीति-प्रतीति पोली, कपट-करतल ठोसु ।।
राग-रंग कुसंग ही सों, साधु-संगति रोसु ।
चहत केहरि-जसहिं सेइ सृगाल ज्यों खरगोसु ।।
सभु सिखवन रसन हूँ नित राम-नामहिं घोस ।
दंभहू कलि नाम कुम्भज सोच-सागर-सोसु ।।

तुलसी ने अपनी राम-भक्ति पर कभी गर्व नहीं किया। जहाँ भी दिखाई है, वहाँ अपनी हीनता ही दिखाई है। देखिए, वे कहते हैं—

ज्यों ज्यों निकट भयो चहौं कृपालु त्यों त्यों दूरि पर्‌यो हौं ।
तुम चहुँजुग रस एक राम हौं हूँ रावरो,
जदपि अघ अवगुननि भर्‌यो हौं ।
बीच पाइ नीच बीच ही छरनि छर्‌यो हौं ।
हौं सुबरन कुबरन कियो, नृप तें भिखारि करि,
सुमति तें कुमति कर्‌यो हौं ।
अगनित गिरि कानन फिर्‌यो, बिनु आगि जर्‌यो हौं ।
चित्रकूट गये हौ लखी कलि की कुचाल सब,
अब अपडरनि डर्‌यो हौं ।
माथ नाइ नाथ सो कहौं हाथ जोरि खर्‌यो हौं ।
चीन्हों चोर जिय मारि है तुलसी सो कथा
सुनि, प्रभुसो गूदरि निबर्‌यों हौं ।

निम्नांकित पंक्तियों में से यद्यपि तुलसी का जीवन भी पर्याप्त अंशों में बोल रहा है, तथापि अधिकांश भाव अपनी हीनता एवं आतुरता को प्रकट करने की उनकी प्रवृत्ति के ही प्रतीक हैं—

कहा न कियो कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो ?
राम-रावरे बिन भये जन जनमि जनमि
जग दुख दसहूँ दिसि पायो ।।

आह-दिवस त्रास दास ह्वं नीच प्रभुनि जनायो।
हाहा करि दीनता कही द्वार द्वार बार बार,
परी न छार मुँह बायो।
असन बसन बिनु बावरो जहँ तहँ उठि धायो।
महिमा मानप्रियप्रान ते तजि खोलि खलनि आगे,
खिनु-खिनु पेट खलायो ॥
नाथ! हाथ कछु नाहि लग्यो लालच ललचायो।
साँच कहौं नाथ कौन सो जो न मोहि,
लोभ लघु निलज्ज नचायो ॥
स्रवन नयन मन मग लगे सब थल पति तायो ॥
मूड़ मारि हिय हारि कै हित हेरि हरि
अब चरन-सरन तकि आयो ॥

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तुलसी ने विनयपत्रिका में अपनी हीनता और आतुरता का राग सर्वत्र अलापा है। उसमे जो भावनाएँ व्यक्त हुई हैं, वे उनकी उसी प्रवृत्ति की देन है। उन भावनाओं से उनके जीवन-चरित का प्रत्यक्षीकरण नहीं होता, क्योंकि अनेक स्थलों पर उन्होंने स्वयं को सामान्य जीव के समान सांसारिक पापात्मा घोषित किया है तथा अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों एवं दुराचारों मे लिप्त बतलाया है, जबकि वे एक अनन्य राम-भक्त तथा सदाचारी साधु कवि थे। अतः विनयपत्रिका को हम आत्मचरित-प्रधान काव्य नहीं कह सकते।

प्रश्न २४—विनयपत्रिका से उपयुक्त उद्धरण देकर सिद्ध कीजिए कि तुलसी का साधु-मत वास्तव में लोक-हित का प्रतिपादक है।

उत्तर—कवि अपनी वाणी से लोक-जीवन का दिशा-निर्देशन करता है। वह अपनी कृति में जैसे भाव और विचार व्यक्त करता है, वैसा ही प्रभाव लोक-जीवन पर उसकी उस कृति का पड़ता है। अतः काव्य को सामाजिक जीवन के साथ सम्बन्धित करने वाला एक बहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, उसमे अन्तर्निहित 'लोक-हित की भावना'। जो कवि आत्म-सुख की कामना से काव्य-रचना करता है, वह भी प्रत्यक्ष या परोक्ष मे लोक का हित या अनहित करता है। यह लोक-हित या अनहित उस कवि की आत्म-सुख-सम्बन्धी धारणा के रूप पर निर्भर है। यदि आत्म-सुखार्थी कवि तामसी या राजसी वृत्ति का

व्यक्ति है, तो वह अपने काव्य से लोक-हित की सीमा में प्रवेश नही करता। केवल सात्त्विकी वृत्ति का कवि ही आत्म-स्वार्थी होने पर भी लोक-हित कर सकता है। उसका आत्म-सुख-चिन्तन लोक-हित की दृढ नींव पर प्रतिष्ठित होगा। तुलसी एक ऐसे ही कवि थे। यह माना जाता है कि उन्होने आत्म-सुखाय या 'स्वान्तः सुखाय' काव्य-रचना की थी। परन्तु वे स्वय सात्त्विकी वृत्ति के व्यक्ति थे। अत. उनका 'स्वान्तः सुखाय' काव्य 'सर्वजनहिताय' अर्थात् लोक-हित की भावना से परिपूर्ण बन गया है।

सात्त्विकी वृत्ति का प्रत्येक व्यक्ति साधु-स्वभाव का होता है। जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण भी सदा साधुता-पूर्ण रहता है। अतः उसका 'साधु मत' सदा लोक-हितकारी सिद्ध होता है। हमारे देश मे 'साधु' शब्द रूढ अर्थ मे भी प्रयुक्त होता है, जिसके अनुसार समाज या लोक से विरक्त होकर ईश्वराधना मे लीन रहने वाला एव भिक्षावृत्ति पर जीवन-निर्वाह करने वाला व्यक्ति 'साधु' की सज्ञा पाता है। रूढ अर्थ मे साधु-सज्ञाधारी सभी व्यक्ति अपने साधना-मार्ग की समानता नही रखते। साधना मे भिन्नता होने से उनके 'मत' मे भी भिन्नता आ जाती है। भक्तिकाल के विभिन्न मार्गों के 'साधु' कहलाने वाले कवि इस तथ्य के प्रमाण हैं। कबीर, सूर, तुलसी, मीरां, चैतन्य आदि सभी 'साधु-सज्ञाधारी' थे, पर सबके मार्गों मे भिन्नता है। यही तक क्यो, उसी भक्तिकाल मे अनेक अन्य साधना-मार्गों को अपनाने वाले अघोरी, औघड़, नाथपथी, सिद्ध आदि भी 'साधु' ही कहलाते थे। परन्तु वे सभी सात्त्विकी वृत्ति के व्यक्ति नही थे। जो 'साधु' श्मशान जगाते थे, मास-भक्षण करते थे तथा मदिरा-पान एव सुन्दरी-भोग को साध्य की प्राप्ति मे सहायक मानते थे, वे 'रूप अर्थ' मे साधु होते हुए भी सात्त्विक वृत्ति के 'साधु' नहीं थे। अतः सभी साधुओ का मत लोक-हितकारी हो, यह अनिवार्य नही। तुलसी रूढ अर्थ मे साधु नहीं थे, वे वास्तविक रूप मे सात्त्विक वृत्तिधारी भगवद् साधु थे। अतः उनका साधु-मत पूर्णत. लोक-हित की भावना पर प्रतिष्ठित है। 'श्रीराम-चरितमानस' मे उनका यह 'मत' लोक-हित की एक विशाल तथा गभीर योजना पर आधारित है। राम के पावन चरित्र का गुणगान तथा उनकी भक्ति जहाँ लसीदास का अभीष्ट लक्ष्य है, वहाँ लोक-पीड़क रावण जैसे महादानव का रने वाले राम की लोक-लीला का प्रचार भी उनका उद्देश्य है। अतः ाकाव्य मे तो स्पष्टतः तुलसी का साधु-मत लोक-हित का प्रतिपादक

ब्रह्म से भिन्न
'माया' मिथ्या समझता है। यह माया उसे अनेक प्रकार के नाच नचाती है
को ब्रह्म से ता प्रतीति का नाम है। अतः तुलसी कहते हैं कि जो व्यक्ति स्व
है तथा स्व पृथक् मानता है, वह भ्रम में पड़ा हुआ है। वह मृगतृष्णा में डूब
को सांप से भु-मार्ग का भोजन बन रहा है—'बूड्यो मृग-वारि खायो जेवरी
है। किन्तु संसार मिथ्या है, अतः जीव का 'देह-गेह' को अपना मानना भ्रम
माया के क यह भ्रम माया के कारण उसके साथ चलता ही रहता है। इस
रहा है— रण ही यह ब्रह्म से पृथक् हो गया है और अनेक कष्ट उठा

> जिय जब तें हरि तें बिलगान्यो।
> तब तें देह-गेह निज जान्यो॥
> माया-बस स्वरूप बिसरायो।
> तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो॥

तुलसी के इस मत में भी स्पष्टतः साधु-मत और लोक-हित का समन्वय
है। वे शरीर तथा घर सम्पत्ति के अभिमान को मिथ्या बता कर लोगों का
यह दम्भ सम प्राप्त करना चाहते हैं, जो लोक-जीवन में अनेक अनर्थों की नींव
डालता है। वे लोक को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि सांसारिक महत्ता,
जो जीव से जीव को भिन्न मानने पर अनुभव की जाती है तथा जो अनेक
प्रकार से दम्भ की वृद्धि करती है—मिथ्या है। मिथ्या वस्तु पर अभिमान करके
लोक को पीड़ित करना मूर्खता है। ऐसा व्यक्ति सदा दुखी रहता है। अतः
मिथ्याभिमान का त्याग करना—जीव का सबसे पहला और प्रधान धर्म है।
तुलसी का यह साधु-मत लोक-हित का ही प्रतिपादक है।

(३) जगत मिथ्या है

तुलसी के साधु-मत की तीसरी सीढ़ी है—जगत् को मिथ्या बताकर उसके
समस्त आकर्षणों का त्याग करने की, वे कहते हैं—

> जग नभ वाटिका रही है फल-फूलि रे।
> धुवाँ के से धौर हर देखि तू न भूलि रे।

लोक-जीवन के अनेक कष्ट सांसारिक मोह से पैदा होते हैं। इसलिए
तुलसी जीव को समझाते हैं—

> जागु जागु जीव जड़! जोहै जग-जामिनी।
> देह-गेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी॥

सोवत सपनेहुँ सहै संसृति संताप रे।
बूड़्यो मृग बारि, खायो जेवरी को साँप रे ॥

जिनको संसार के मिथ्यात्व का ज्ञान नहीं, वे ही उसे रमणीय समझते हैं—

अनविचार रमनीय सदा संसार भयंकर भारी।
सम-संतोष-दया विवेक तें ब्यवहारी सुखकारी ॥

तुलसी का संसार को मिथ्या मानने में आशय यह है कि जीव को सुख-भोग का शिकार नहीं होना चाहिए। जगत् को सत्य मानकर उसे यहाँ के मिथ्या सुखों के लालच में पड़कर पाप नहीं करना चाहिए। इस साधु-मत मे स्पष्टतः लोक-हित का भाव निहित है। यदि समाज का प्रत्येक व्यक्ति जगत् के मिथ्यात्व को समझ ले तो वह उन अनाचारों से बहुत अंशों मे बच सकता है, जिनके कारण लोक-जीवन विविध दुखों से परिपूर्ण रहता है।

(४) आनन्द रूप 'राम' में पूर्ण विश्वास

तुलसी ने अपने साधु-मत के अन्तर्गत जीव को यह भी समझाने की चेष्टा की है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है। उन्होंने यही बतलाया है कि वह सर्वशक्तिमान ईश्वर आनन्द रूप है, जिससे जीव की अभिन्नता है; यथा—

आनन्द-सिन्धु-मध्य तव बासा।
बिनु जाने कस मरसि पियासा ॥
मृग-भ्रम बारि सत्य जिय जानी।
तहँ तू मगन भयो सुख मानी ॥
तहँ मगन मज्जसि पान करि।
त्रयकाल जल नाहीं जहाँ ॥
निज सहज अनुभव रूप तव।
खल भूलि अब आयो जहाँ ॥
निर्मल निरंजन निर्विकार।
उदार सुखतें हरिहर्‌यो ॥
निःकाज राज बिहाइ नृप।
इव सपन कारागृह पर्‌यो ॥

तुलसी कहते हैं कि जीव को उस परमात्मा के साथ एकाधिकार होने के

लिए शारीरिक विकारों का त्याग कर देना चाहिए। ऐसा करके वह आत्म-स्वरूप से अनुराग करेगा—

देह जनित विकार सब त्यागै।
तब फिर निज स्वरूप अनुरागै॥

आत्म-स्वरूप को प्राप्त कर लेना ही ब्रह्म को प्राप्त कर लेना है। राम ब्रह्म के अवतार हैं; अतः तुलसी कहते हैं—

अजहूँ विचार विकार तजि,
भजु राम जन सुखदायक।
भव-सिन्धु दुस्तर जल रथ,
भजु चक्रधर सुरनायकं।
बिनु हेतु करुनाकर उदार,
अपार माया तारनं।
कैवल्यपति जगपति रमापति,
प्रानपति गति कारनं।

ईश्वर-भक्ति का यह आधार भी लोक-हित का ही कारण है। आस्तिकता समाज में अनाचारों का आधिक्य नहीं होने देती। ईश्वर में विश्वास करने वाला व्यक्ति प्रायः पाप करने से डरता है। अतः तुलसी ने राम के आनन्द रूप का जीव को परिचय देकर परोक्ष में लोक-हित का ही प्रतिपादन किया है।

(५) साधु-संगति की आवश्यकता

ईश्वर-भक्ति प्राप्त करने के लिए तुलसी ने साधु-संगति की आवश्यकता बतलाई है। वे राम-भक्ति को सुखकारी मानते हैं, परन्तु उसके साथ-साथ यह भी कहते हैं कि बिना सत्संग के भक्ति नहीं हो सकती—

रघुपति भगति सुलभ सुखकारी।
सो भय ताप-सोक-भ्रम हारी॥
बिनु सतसंग भक्ति नहिं होई।
ते तब मिलै द्रवै जब सोई॥
जब द्रवै दीनदयालु राघव,
साधु संगति पाइये!

जेहि दरस-परस समागमादिक,
पाप-रासि नसाइए।
जिनके मिले सुख-दुख समान,
अमानतादिक गुन भए।
मद-मोह लोभ विषाद क्रोध,
सुबोध तें सहजहिं गए।

तथा—

सेवत साधु द्वैत-भय-भागै।
श्री रघुबीर चरन लौ लागै।

इन उदाहरणों में जहाँ एक ओर तुलसी का साधु-मत व्यक्त है, वहाँ दूसरी ओर यह भी स्पष्ट है कि लोक-हित के लिए मनुष्यों को साधु-सत्संग भी आवश्यक है। समाज में 'अनहित' की भावना का प्रसार कुसंग के कारण ही होता है। जिन लोगों को सत्संग प्राप्त होता है, वे प्राय: कुकर्मों का शिकार होने से बचे रहते हैं। लोक-हित के लिए आवश्यक है कि समाज में सज्जनों की संख्या बढ़े और सभी प्रकार के कुसंग का अन्त हो। अतः तुलसी के साधु-मत में लोक-हित का दृष्टिकोण भी परोक्षतः अन्तर्निहित है।

(६) आत्म-निरीक्षण

तुलसी ने भक्त के लिए आत्म-दोषों से अवगत रहना और उनके प्रक्षालन के लिए प्रयत्न करना भी आवश्यक माना है। यह तभी सम्भव हो सकता है, जबकि जीव में वह भावना आ जाय जो तुलसी के हृदय में इन पंक्तियों के माध्यम से प्रकट हुई है—

कैसे देउँ नाथहिं खोरि।
✓ काम-लोलुप भ्रमत मन हरि, भगति परिहरि तोरि॥
बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि।
देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता अस मोरि॥

तुलसी ने निम्नांकित पंक्तियों में जिस प्रकार आत्म-दोष दर्शन किया है, उसी प्रकार जब जीव अपने दोषों को समझ लेगा, तभी वह भविष्य में दोषों का भाजन बनने से बच सकता है—

✓ रामचन्द्र रघुनायक तुम सों, हौं बिनती केहि भाँति करौं।
अघ अनेक अवलोक आपने, अनघ नाम अनुमान डरौं॥

पर-दुख दुखी पर-सुख तें, संत सील नहिं हृदय धरौं।
देखि आन की बिपति परम सुख, सुनि सपति बिनु आग जरौं ॥
भक्ति विराग ग्यान साधन कहि, बहु बिधि डहकत लोग फरौं।
सिव-सरबस सुखधाम नाम तव, बेंचि नरकप्रद उदर भरौं ॥
जानत हौं निज पाप जलधि जिय, जल सीकर सम सुनत लरौं।
रज-सम पर-अवगुन सुमेरु करि, गुन गिरि-सम रजतें निदरौं ॥
नाना वेष बनाय दिवस निसि, परवित जेहि तेहि जुगति हरौं।
एकौ पल न कबहुँ अलोल चित, हित दै पद-सरोज सुमिरौं ॥
जो आचरन विचारहु मेरो, कलप कोटि लगि औटि मरौं।
तुलसिदास प्रभु कृपा विलोकनि, गोपद-ज्यों भवसिंधु तरौं ॥

आत्म-दोष-दर्शन की यह भावना साधुमत का अंग होने के साथ-साथ लोकहित की भी सूचक है। ससार मे अनेक संघर्ष इसलिए पैदा होते हैं कि मनुष्य अपने दोषों को न देखकर सदा दूसरों के दोषों का दर्शन करता है तथा उन्हें 'रज' के समान तुच्छ होने पर भी सुमेरु' के समान विशाल बनाकर फैलाता है। मनुष्य की यह कुप्रवृत्ति लोकहित मे बाधक है। तुलसी का साधु-मत इस कुप्रवृत्ति का नाश चाहता है। अतः हम उसे लोक-हित का प्रतिपादक भी कह सकते हैं।

(७) सन्त-स्वभाव की प्राप्ति

तुलसी का मत है कि जीव को जब सन्त-स्वभाव की प्राप्ति हो जाती है, तब वह सच्चे आत्म-सुख मे लीन हो जाता है। अतः वे स्वयं भी यह कामना करते हैं कि—

कबहुँक यौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ कृपालु कृपा ते, संत-सुभाव गहौंगो ॥
जथालाभ संतोष सदा, काहू सौं कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरन्तर मन-क्रम-बचन नेम निबहौंगो ॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन, नहिं दोष कहौंगो ॥
परिहरि देह-जनित चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि-भगति लहौंगो ॥

ये पंक्तियाँ केवल साधु-मत की ही प्रतिपादक नही हैं, बल्कि लोक-हित के उद्देश्य से भी युक्त हैं। समाज मे यद्यपि ऐसी दशा आना कठिन है कि सभी मनुष्य उपर्युक्त स्वभाव धारण कर लें, किन्तु यदि आ सके तो उसमें लोक-हित की कितनी मात्रा निहित है, इसका सहज मे अनुमान लगाया जा सकता है।

साराश यह कि समस्त 'विनयपत्रिका' ऐसे उदाहरणो से भरी हुई है, जिससे तुलसी का साधु-मत तो प्रकाश मे आता ही है, साथ ही उससे लोक-हित की दशा का भी निर्देशन होता है। कोई उन समस्त उदाहरणो को पढ़कर पूर्ण विश्वास के साथ यह कह सकता है कि 'विनयपत्रिका' मे व्यक्त तुलसी का साधु-मत वास्तव मे लोक-हित का प्रतिपादक है।

प्रश्न २५—वे कौन-सी विशेषताएँ हैं, जिनके कारण 'विनयपत्रिका' तुलसी की एक उत्कृष्ट कृति मानी जाती है?

उत्तर – गोस्वामी तुलसीदास ने राम-कथा को अपनी काव्य-रचना का प्रमुख विषय बनाया था। उन्होंने 'श्रीरामचरितमानस' जैसा विशाल एवं लोकप्रिय महाकाव्य लिखकर भगवान् राम की लोक-लीला को काव्य-रसिकों की वाणी पर सदा के लिए अमर कर दिया। गीतावली, कवितावली एवं बरवै-रामायण मे भी उन्होंने सक्षेप मे राम-कथा की अभिव्यक्ति की। 'विनयपत्रिका' उनकी प्रमुख रचनाओं मे से एक है। इस काव्य मे उन्होंने राम की कथा का गायन तो नहीं किया, किन्तु राम के गुण-गान की इसमे भी कमी नही है। वस्तुतः यह काव्य तुलसी की सभी काव्य-प्रवृत्तियों का निचोड़ तथा भावुकों का सर्वस्व है। इसीलिए कुछ आलोचकों ने 'श्रीरामचरितमानस' से 'विनयपत्रिका' से श्रेष्ठ माना है। वस्तुत. यह काव्य कुछ ऐसी विशेषताओं से युक्त है, जिसके कारण विद्वान उसे एक उत्कृष्ट कृति मानते हैं।

सक्षेप में, ये विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(१) काव्य और संगीत का अद्भुत समन्वय

तुलसी ने विनयपत्रिका मे काव्य एव सगीत का जैसा समन्वय किया है, वैसा समन्वय उनकी किसी अन्य कृति मे नहीं मिलता। 'श्रीरामचरितमानस' एक विशाल महाकाव्य तो है, परन्तु वह 'विनयपत्रिका' के समान सगीत की राग-रागनियों पर खरा उतरने वाला काव्य नहीं। 'कवितावली' भी 'विनयपत्रिका' के समान एक स्फुट काव्य है, किन्तु उसमे भी सगीत को स्थान नहीं

मिल सका है। 'गीतावली' एवं 'कृष्ण-गीतावली' की रचना तुलसी ने पदों में की है और इनमें सन्देह नहीं कि दोनों कृतियाँ तुलसी की सुन्दर काव्य-कला का नमूना हैं परन्तु ये भी काव्य और संगीत के समन्वय के क्षेत्र में 'विनयपत्रिका' की समता नहीं कर पातीं। इस काव्य में कोई भी ऐसा पद नहीं, जिसको किसी न किसी राग में गाया न जा सके; साथ ही जिसे काव्य-कला की उत्कृष्ट कसौटी पर न कसा जा सके। वस्तुतः काव्य और संगीत का समन्वय काव्य-साधना की पूर्णता का फल है। यह फल तुलसी को 'विनयपत्रिका' में सबसे अधिक मात्रा में प्राप्त हुआ है। जहाँ इस कृति का प्रत्येक पद उत्कृष्ट काव्य का नमूना है, वहाँ प्रत्येक पद संगीत के किसी राग का भी उदाहरण प्रस्तुत करता है। काव्य और संगीत के इस समन्वय से 'विनयपत्रिका' भावुकों का कण्ठहार बन गई है। निम्नांकित पद इस तथ्य का प्रमाण हैं—

> जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
> काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे॥
> कौन देव बराइ बिरद-हित, हठि हठि अधम उधारे॥
> खग, मृग, ब्याध, पषान, बिटप, जड़, जवनकवनसुत तारे॥
> देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज, सब माया-बिबस बिचारे।
> तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपुनपो हारे।

इन पंक्तियों में काव्य और संगीत का सुन्दर समन्वय द्रष्टव्य है। यह विशेषता 'विनयपत्रिका' को उत्कृष्ट काव्य की कोटि में ले जाती है।

(२) धार्मिक मत-मतान्तरों का निराकरण

तुलसी के युग में अनेक धर्म और सम्प्रदाय अपना मतभेद फैला रहे थे। धार्मिक मत-मतान्तरों के प्रभाव से जन-जीवन से सच्ची धर्म-बुद्धि का लोप होता जा रहा था। विनयपत्रिका में तुलसी ने 'राम' को अपनी विनय तो सुनाई ही; साथ ही उन्होंने अपने युग के समस्त धार्मिक मत-मतान्तरों का निराकरण भी कर दिया। काव्य की उत्कृष्टता इसी में है कि वह व्यक्ति की भावना में डूबा हुआ होने पर भी समाज और युग की उपेक्षा न करे। तुलसी की विनयपत्रिका में युग और समाज को वाणी मिली है। उन्होंने उसमें विभिन्न मत-मतान्तरों का निराकरण बड़ी कुशलता के साथ किया है। ऐसी कुशलता से कि कहीं भी उनकी काव्य-कला को गौणता प्राप्त नहीं हुई। उन्होंने गणेशजी से लेकर राम तक सभी प्रमुख देवताओं की स्तुति करके और सबसे रामभक्ति माँग कर

यह निर्णय दिया है कि मत-मतान्तरों को सामाजिक जीवन में स्थान देना उचित नहीं क्योंकि सभी देवताओं का भी उपास्य एक बड़ा देवता—राम है। उस महा देवता—परमात्मा के प्रति, मत-मतान्तरों को जन्म देकर, विवाद फैलाना उचित नहीं। उन्होंने शिव और शक्ति की वन्दना करके और उनसे राम की भक्ति का वर मांग कर शैवो, शाक्तों और वैष्णवों का झगड़ा सुलझा दिया है तथा राम को सगुण तथा निर्गुण—दोनों रूपों मे मानकर निराकार-साकार सम्बन्धी द्वन्द्व भी शान्त कर दिया है। 'विनयपत्रिका' के पदो मे तत्का-लीन मत-मतान्तरो के निराकरण की यह चेष्टा सर्वाधिक मात्रा मे व्यक्त हुई है। इस काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करने वाली यह एक अत्यन्त महान् और महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

शक्ति की स्तुति करते हुए तुलसी कैसी विनम्र वाणी मे कहते हैं—

दुसह दोष-दुख दलनि, करु देवि दाया।
विश्व - मूलाऽसि, जनसानुकूलाऽसि,
कर शूलधारिनि महामूलमाया।
× × ×
निगम आगम-अगम गुर्वितव गुन कथन,
उर्विधर करत जेहि सहज जीहा।
देहि मा, मोहि पन प्रेम यह नेम निज,
राम घनश्याम तुलसी पपीहा।

और शिवजी की आराधना मे उन्होंने शिव और शक्ति-रूप पार्वती के प्रति कहा है—

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो, दिन देत दये बिनु, बेद-बड़ाई भानी॥
निज घर की बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिव की दई सम्पदा देखत, श्री-सारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक संवारत, हौं आयो नकबानी॥
दुखी दीनता दुखियन के दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहि, भीख भली मैं जानी॥

प्रेम-प्रसंसा-विनय व्यंगयुत, सुनि विधि की बरबानी ।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत-मातु मुसकानी ॥

मत-मतान्तरों के निराकरण में तुलसी ने खण्डन-मण्डन का बौद्धिक मार्ग नहीं अपनाया है, अपितु भावात्मक ढंग से उन्होंने धार्मिक विश्वासों में समरसता लाने की चेष्टा की है । इस प्रकार 'विनयपत्रिका' जीवन को काव्य से सम्बन्धित करती है । निस्सन्देह ऐसी कृति, जो किसी भी प्रकार के सामयिक संघर्ष के उन्मूलन में सहायक होती है, एक उत्कृष्ट कृति कहलाने की अधिकारिणी है ।

(३) भक्ति का चरमोत्कर्ष

भक्तिकाल की अधिकांश कृतियों में भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति प्रधान रही है । 'विनयपत्रिका' में तुलसी ने राम के प्रति अपनी अनन्य भक्ति का परिचय दिया है । उसमें हम भक्ति की एक पूर्ण पद्धति का अनुसरण पाते हैं । भक्त-हृदय की निश्छल झाँकी हमें उसके हर एक पद में मिलती है । कवि जिस विषय को अपनी काव्य-रचना का विषय बनाता है, उसे यदि वह चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने में समर्थ होता है, तो निस्सन्देह उसकी कृति उत्कृष्ट कही जायगी ।

'विनयपत्रिका' में हमें भक्ति का चरमोत्कर्ष मिलता है । तुलसी का भक्त-हृदय उसकी हर पंक्ति में मुखरित हो रहा है । एक उदाहरण देखिए । कितनी विनम्रता, समर्पण-भावना एवं अनन्यता के साथ तुलसी कहते हैं—

गरैंगी जीह जो कहौं और को हौं ।
जानकी जीवन ! जनम-जनम जग ज्यायो तिहारेहि कौर को हौं ॥
तीन लोक तिहुँ काल न देखत सुहृद रावरे जोर को हौं ।
तुम सों कपट करि कलप-कलप कृमि ह्वै हौं नरक घोर को हौं ॥
कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहिं कियो भौंतुवा भौंर को हौं ।
तुलसिदास सीतल नित यहि बल, बड़े ठेकाना ठौर को हौं ॥

निम्नांकित पंक्तियों में भी तुलसी की भक्ति-भावना का निर्मल रूप द्रष्टव्य है—

कबहूँ कृपा करि रघुबीर ! मोहूँ चिते हो ।
सो बुरो जन आपनो जिय जानि दयानि दयानिधि !
अवगुन अमित बितैहो ॥

जनम जनम हौं मन जित्यो, अब मोहिं जितैहौ।
हौं सनाथ ह्वै हौं सही, तुमहुँ अनाथपति
जो लघुतहि न भितैहौ॥
बिनय करौं अपभयहु तें, तुम्ह परम हितैहौ।
तुलसिदास कासों कहै? तुमही सब मेरे
प्रभु गुरु मात पितैहौ।

निस्सन्देह विनयपत्रिका मे भक्ति का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है। यह विशेषता इस कृति को उत्कृष्टता की कोटि में पहुँचाने मे पूर्ण सहायक है। भक्तो का कण्ठहार, ऐसा सुन्दर काव्य तुलसी जैसे अनन्य भक्त-कवि की वाणी का ही प्रसाद हो सकता है।

(४) हृदय की निश्छलता एवं भाव-गाम्भीर्य

विनयपत्रिका की चौथी विशेषता, जिसके कारण वह एक उत्कृष्ट कृति मानी जाती है, तुलसी के निश्छल हृदय से निःसृत निर्मल भावों की मंदाकिनी का वह अजस्र प्रवाह है जो हमे उसके प्रत्येक पद मे मिलता है। कवि-हृदय की निष्कपटता का गाम्भीर्य यदि कहीं देखना है, तो विनयपत्रिका मे देखिए। एक-एक पंक्ति हृदय की भावाकुलता की देन है, कुछ उदाहरण देखिए—

(१) कबहुँ मन बिस्राम न मान्यो।
निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इन्द्रिन तान्यो॥
जदपि बिषय सँग सह्यो दुसह दुख, बिषम जाल अरुझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़, ममताबस, जानत हूँ नहिं जान्यो।
जन्म अनेक किये नाना बिधि, कर्म-कीच चित सान्यो।
होइ न बिमल बिबेक-नीर-बिनु बेद पुरान बखान्यो॥
निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों हरषि हृदय नहिं आन्यो।
तुलसिदास कब तृषा जाय सर खनतहि जनम सिरान्यो॥

(२) ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम-भक्ति-सुरसरिता, आस करत ओसकन की॥
धूम-समूह निरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होत लोचन की॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन, जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस, छति बिसारि आनन की॥

कहँ लों कहौं कुचाल कृपानिधि, जानत हौं गति जन की।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की ॥

इन पदों में जिस प्रकार कवि-हृदय की निश्छलता एवं भाव-गाम्भ
द्रष्टव्य है, उसी प्रकार प्रत्येक पद निश्छल हृदय की गम्भीर भावाभिव्यक्ति
युक्त है।

(५) युग-जीवन की अभिव्यक्ति

विनयपत्रिका की पाँचवी विशेषता यह है कि एक भक्ति-परक काव्य हो
हुए भी उसमें तुलसी ने युग-जीवन की उपेक्षा नहीं की है। जहाँ एक ओ
उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन को परोक्षतः उसमें अभिव्यक्त किया है, वह
दूसरी ओर उन्होंने अपने युग के समाज की विभिन्न दशाओं पर भी दृष्टिपा
किया है।

उदाहरणार्थ वे सामाजिक जीवन का चित्र प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं—

आस्रम बरन धरम बिरहित जग, लोक बेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पाप रत, अपने-अपने रंग रई है॥
सांति सत्य सुभरीति गई घटि; बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत, साधु साधुता सोचति, खल बिलसति हुलसति खलई है॥

इसी प्रकार राजनीतिक दशा पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है—

राज समाज कोटि कटु,
कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परिमिति,
रति हेतुवाद हठि हेरि हई है।

(६) दार्शनिक विवादों का समाधान

तुलसी ने अपने युग के दार्शनिक विवादो का समाधान करने की भी
वनयपत्रिका' मे सफल चेष्टा की है। उन्होंने कवित्व को प्रधान रखते हुए
दार्शनिक विचारों को बहुत संक्षेप मे अत्यन्त सुलझे हुए ढङ्ग से प्रस्तुत
है।

उदाहरणार्थ—द्वैतवाद, अद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद आदि के झगड़ों का अन्त
करते हुए वे लिखते हैं—

केसव, कहि न जाइ का कहिए।
[illegible]

सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न, मरै भीति, दुख पाइय इहि तनु हेरे॥
रबिकर-नीर बसै अति दारुन, मकर रूप तेहि माहीं।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं॥
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै॥

काव्य और दर्शन का जैसा अद्भुत समन्वय इस पद में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। 'विनयपत्रिका' की ही यह विशेषता है कि उसमें ऐसे कवित्व-पूर्ण ढङ्ग से दार्शनिक विवादों का समाधान प्रस्तुत किया गया है।

(७) लोक-मंगल की भावना

हर एक काव्य लोक-मङ्गल की भावना से अनुप्राणित नहीं होता। विनय-पत्रिका में आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता होते हुए भी लोक-मङ्गल तत्त्व पाया जाता है, यह उसकी एक बहुत बड़ी विशेषता है। तुलसी राम-भक्ति द्वारा अपना उद्धार तो चाहते ही हैं; साथ ही वे जीवमात्र के हित की भी कामना करते हैं। इसीलिए वे 'विनयपत्रिका' में बार-बार यह कहते हैं—

राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे।
घोर-भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे।
एक ही साधन सब रिद्धि सिद्धि साधि रे।
ग्रसे कलि-रोग-जोग संजम समाधि रे॥

तथा—

राम राम राम जीह जौलौं तू न जपिहै।
तौलौं तू कहूँ हौ जाय तिहूँ ताप तपिहै॥
× × ×
तुलसी तिलोक, तिहूँ काल तोसे दीन को।
रामनाम ही की गति जैसे जल मीन को॥

(८) अद्भुत वाक्-चातुर्य एवं उक्ति-वैचित्र्य

विनयपत्रिका की अगली विशेषता है उसके रचयिता कवि की अद्भुत वाक्-चातुरी एवं उक्ति-वैचित्र्य। जिस बात को तुलसी अपने आराध्य से कहना चाहते हैं, उसे इतनी वाक्-पटुता के साथ प्रस्तुत करते हैं कि उनके अद्भुत

काव्य-चमत्कार आ जाता है; उदाहरणार्थ—माता सीता की स्तुति करते हुए ये कितनी चतुराई से अपनी विनय राम तक पहुँचाना चाहते हैं—

> कबहुँक अम्ब अवसर पाइ ।
> मेरिओ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ ।।
> दीन सब अंगहीन छीन मलीन अघी अघाइ ।
> नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ ।।
> बूझि हैं 'सो है कौन' कहिबी नाम दसा जनाइ ।
> सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ ।।
> जानकी जग-जननि जन की किये बचन सहाइ ।
> तरै तुलसीदास भव तव-नाम-गुनगन गाइ ।।

भाव-गाम्भीर्य और वाक्-चातुर्य का ऐसा विचित्र समन्वय विनयपत्रिका की ही विशेषता है । उक्ति-वैचित्र्य का भी एक उदाहरण लीजिये—

> तौ हौं बार-बार प्रभुहि पुकारिकै खिजावतो न,
> जो पै मोको होतो कहूँ ठाकुर-ठहरु ।

(६) पाण्डित्य-पूर्ण भाषा

विनयपत्रिका की एक अन्य विशेषता यह भी है कि उसमें भाषा का पाण्डित्यपूर्ण रूप मिलता है । वैसे तो तुलसी की सभी कृतियों में अत्यन्त परिमार्जित तथा सहज-सुबोध भाषा मिलती है, परन्तु जैसा पाण्डित्य विनयपत्रिका की भाषा में पाया जाता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । यह इस कृति की एक बहुत बड़ी विशेषता है । क्लिष्ट-से-क्लिष्ट संस्कृत-गर्भित भाषा जहाँ इस पुस्तक में मिलती है, वहाँ सरल-से-सरल साहित्यिक भाषा का भी इसमें प्रयोग हुआ है । दोनों प्रकार की भाषा में उनका पाण्डित्य प्रकट होता है । विनयपत्रिका अपनी इस विशेषता के कारण तुलसी की एक उत्कृष्ट कृति मानी जाती है । भाषा सम्बन्धी दो उदारण देखिए—

(१) जयति मगलाचार ससार भारापहर बानराकर बिग्रह पुरारी ।
  राम-रोपानल-ज्वालमाला-मिष ध्वांतचर-सलभ सहारकारी ।।
  जयति मरुदजनामोद-मंदिर, नतग्रीव-सुग्रीव-दुखैक बन्धो ।
  जातुधानोद्धत-क्रुद्ध-कालाग्निहर, सिद्ध सुर-सज्जनानद-सिन्धो ।।

(२) लाभ कहा मानुष-तनु पाये ।
  काय-बचन-मन सपनेहुँ कबहुँक, घटत न काज पराये ।।

जो सुख सुरपुर नरक गेह बन, आवत बिनहिं बुलाये।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन, समुझत नहिं समुझाये ।।

(१०) सुन्दर कला-विधान

तुलसी ने विनयपत्रिका को अपनी भक्ति-तन्मयता से ओत-प्रोत करके भी उसे उच्चकोटि की काव्य-कला की कसौटी से गिरने नहीं दिया, यह भी उसकी एक बहुत बड़ी विशेषता है। उन्होंने इस कृति में सभी दृष्टियों से अत्यन्त सुन्दर कला-विधान प्रस्तुत किया है। 'विनयपत्रिका' भेजने के लिए विनय की एक पद्धति-विशेष अपनाते हुए उन्होंने प्रमुख देवताओं की स्तुति करके बड़े सुन्दर ढंग से राम-भक्ति के क्षेत्र में प्रवेश किया है। फिर बड़ी कुशलता से भक्ति की मर्यादाओं का निर्वाह करते हुए अपनी कातरता और आतुरतापूर्ण वाणी सुनाई है। एतदर्थ उन्होंने बड़ी प्रभावशाली रागात्मक शैली का प्रयोग किया है एवं अद्भुत अलंकार-चातुर्य दिखलाया है। आलंकारिक पदावली के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) जाके पद-कमल लुब्ध मुनि मधुकर विरत जे,
परम सुगतिहु लुभाहिं न।

(२) जदपि मग्न मनोरथ बिधि बस, सुख इच्छत दुख पावै।
सुखद सुशील सुजान सूर सुचि, सुन्दर कोटिक काम सो।

(११) शान्त रस का अगाध सिन्धु

विनयपत्रिका की ग्यारहवी विशेषता है उसके अन्दर शान्त रस की विशद अभिव्यक्ति। यही एक ऐसा रस है, जो जीव को अन्त में तृप्ति देता है। विनयपत्रिका इस रस का अगाध सिन्धु है। अतः इस दृष्टि में भी यह काव्य एक उत्कृष्ट कृति मानी जाती है।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि विनयपत्रिका तुलसी की एक ऐसी उत्कृष्ट काव्य कृति है, जो अनेक विशेषताओं से समलंकृत है तथा काव्यकला का एक श्रेष्ठ रूप होने के कारण काव्य-रसिकों एवं भक्तों का समान रूप से कण्ठहार बनी हुई है।

प्रश्न २६—विनयपत्रिका का उद्देश्य क्या है और इस कार्य में कवि को कहाँ तक सफलता मिली है?

उत्तर—काव्य-रचना कभी भी निरुद्देश्य नहीं होती। जो कवि जितना महान् होता है, वह उतने ही महान् उद्देश्य को लेकर काव्य-रचना करता है।

तुलसी हिन्दी के एक सर्वाधिक लोकप्रिय एवं श्रेष्ठतम महाकवि हैं। अतः उनकी काव्य-रचना का उद्देश्य भी उतना ही महान् है। उनकी प्रत्येक कृति लोकहित का ध्यान रखकर लिखी गई है। विनयपत्रिका एक आत्माभिव्यक्ति-प्रधान काव्य है, परन्तु उसमें भी तुलसी का उतना ही महान् उद्देश्य छिपा हुआ है, जितना महान् उद्देश्य हमें उनकी अन्य रचनाओं मे मिलता है। विनय-पत्रिका मे आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता देखकर हम केवल उसे आत्मोद्धार की कामना से लिखा गया काव्य नही कह सकते। वस्तुतः उसमे कवि का अत्यन्त पवित्र तथा महान् उद्देश्य छिपा हुआ है। उस उद्देश्य की अभिव्यक्ति किस पद मे नही हुई, अपितु सभी पदो में उसकी क्रमबद्ध योजना मिलती है।

तुलसी ने विनयपत्रिका मे जीव के परमार्थ पर विस्तार से विचार किया है। उनका लक्ष्य है—उसे मोक्ष का मार्ग दिखलाना। वे लोक-हित की विशाल भावना लेकर जागतिक जीवन के दुखादि का निरीक्षण करते हैं, उनके निवारण का उपाय सोचते हैं, विभिन्न विश्वासो और मतो का समन्वय करते हैं और फिर अन्तिम निष्कर्ष निकाल कर जीव-मात्र को राम-भक्ति का सरल सुन्दर पथ निर्दिष्ट करते हैं। प्रारम्भ से अन्त तक प्रत्येक पद मे उनकी जो कातरता, आतुरता, विनम्रता एव भक्ति-तन्मयता मिलती है, वह अपनी पीड़ा के कारण ही नही है, *अपितु लोक-पीड़ा की व्यापक अनुभूति के कारण भी।* इस अनुभूति का वैयक्तिक आधार तो यह है कि तुलसी कलियुग की कुचालो से थक चुके हैं, ससार मे सर्वत्र स्वार्थियो का जमघट दिखाई देता, कोई भी उन्हे पारमार्थिक भावना से युक्त नजर नही आता। 'स्वारथ के साथिन्ह तज्यो' कहकर वे इसी ओर सकेत करते हैं और शायद इसीलिए वे राम के द्वार पर जा पड़ते हैं—

प्रन करि हौं हठि आजु तें राम-द्वार पर्यो हौं।

उन्हें अपनी मलीनता का पूर्ण ज्ञान है—

मानस मलीन, करतब कलिमल पीन,
जीहहु न जप्यो नाम, बक्यो आउ-बाउ मैं।
कुपथ कुचाल चल्यो, भयो न भूलिहूँ भलो,
बाल दसा हूँ न खेल्यो खेलत सुदाउँ मैं॥

वे राम की शरण में इसीलिए गए हैं, क्योंकि उन्होंने स्वयं अपने कान से
म का 'सुयश' सुन लिया है—

पाहि पाहि राम ! पाहि, रामचन्द्र रामचन्द्र
सुजस स्रवन सुनि आयो हौं सरन ।

अतः राम की शरण में जाने के लिए तुलसी ने 'विनयपत्रिका' लिखी है, यह उसके वैयक्तिक पक्ष को लेकर कहा जा सकता है। वे राम को अपनी विनय सुनाना चाहते हैं, इसीलिए उन्होंने अपनी समस्त भावनाओं को विनय-पत्रिका का रूप दिया है, किन्तु इस वैयक्तिकता के पीछे तुलसी का लोक-हित सम्बन्धी जो दृष्टिकोण निहित है, वही विनयपत्रिका की रचना का एक महान् उद्देश्य है। वे अपनी भावनाओं को लोक की भावना का रूप देकर मंगल की भावना से प्रभावित होते हैं और उसी को 'विनयपत्रिका' में विस्तार से अभिव्यक्त करते हैं। वे मनुष्य-शरीर की सार्थकता इसी में मानते हैं कि उसको प्राप्त करके जीव परोपकार करे—

काज कहा नरतनु धरि सार्यो।
पर-उपकार सार स्रुति को जो सो धोखेहु न बिचार्यो ॥
द्वैत मूल, भय सूल, सोक फल, भवतरु टरै न टार्यो ।
रामभजन-तीछन कुठार लै सो नहिं काटि निवार्यो ॥

वे अपना कल्याण-मात्र नहीं चाहते, अपितु संसार भर को कल्याण का मार्ग दिखाने के लिए अधीर हैं। यह अधीरता उनकी परहित की एक स्थायी कामना पर आधारित है। वे बार-बार यह अभिलाषा करते हैं—

तेहि तनु केर एक फल कीजै पर उपकार ।
× × ×
परहित निरत सो पावन बहुरि न व्यापत सोक ।

यही परहिताभिलाषा उन्हें बार-बार जीव को राम-भक्ति के प्रति उन्मुख करने को बाध्य करती है। वे जागतिक जीवों को सचेत करते हैं—

जागु-जागु जीव जड़ ! जोहै जग-जामिनी ।
देह-गेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी ॥
सोवत सपनेहूँ सहै संसृति संताप रे,
बूड्यो मृग बारि, खायो जेवरी को साँप रे ॥

वे राम की अनन्य-भक्ति का प्रचार करके जीव को मोक्ष का विशुद्ध मार्ग दिखाना चाहते हैं। वे जीवों को राय देते हैं—

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
सो छाँड़िये कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितनि, भये मुद मंगलकारी॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहु तक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो॥

तुलसी का मुख्य उद्देश्य है—जागतिक जीवों के हित के लिए राम-भक्ति में उनकी प्रीति बढ़ाना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अनेक उपायों का प्रयोग किया है। कभी तो वे कहते हैं—

जो पै रहिनि राम सो नाहीं।
तौ नर खर कूकर सूकर सम, वृथा जियत जग माहीं॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास सबही के।
मनुज देह सुर साधु सराहत, सो सनेह सिय-पी के॥
सूर, सुजान, सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई।
बिनु हरिभजन इँनारुन के फल तजत नहीं करुआई॥
कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि, सील, सरूप सलोने।
तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने॥

और भी कहते हैं—

ऐसेहि जनम-समूह सिराने।
प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरन बिराने॥
जे जड़ जीव कुटिल कायर खल, केवल कलि-मलि साने।
सूखत बदन प्रसंसत तिन्ह कहँ, हरि तें अधिक कर माने॥
सुख हित कोटि उपाय निरन्तर करत न पायँ पिराने।
सदा मलीन पंथ के मल ज्यों, कबहुँ न हृदय थिराने॥
यह दीनता दूर करिबे को, अमित जतन उर आने।
तुलसी चित चिंता न मिटै, बिनु चिंतामनि पहिचाने॥

उन्होंने जहाँ अपनी दीनता दिखाई है और आत्म-ग्लानि का प्रदर्शन किया, वहाँ भी वे लोकहित की कामना को भूले नहीं हैं। वे अपनी बुराइयों को भगवान् के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए स्वयं को जागतिक जीवों का प्रतिनिधि बनते प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि उनकी वेदना और पीड़ा विश्व की वेदना और पीड़ा बन गई है। जहाँ वे यह कहते हैं—

सुनु मन मूढ़ ! सिखावन मेरो।
हरिपद-बिमुख लह्यो न काहु सुख, सठ ! यह समुझि सबेरो।
बिछुरे ससि रबि मन-नैननि तें, पावत दुख बहुतेरो ॥

× × ×

छूटै न बिपति भजे बिनु रघुपति, स्रुति सन्देहु निबेरो।
तुलसिदास सब आस छाँड़ि करि, होहु राम कर चेरो ॥

यहाँ हमें उनकी वीणा में हर एक जीव अपने मन को समझाता प्रतीत होता है। वस्तुतः तुलसी अपने हृदय की वाणी को जगत् की वाणी का रूप देना चाहते हैं और इस कार्य में वे पूर्णतः सफल हुए हैं। उन्होंने जहाँ यह भावना व्यक्त की है कि—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ-कृपालु कृपा तें, संत-सुभाव गहौंगो ॥
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरंतर मन-क्रम-बचन नेम निबहौंगो ॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि, तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, नहिं दोष कहौंगो ॥
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुधि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल-हरि-भक्ति लहौंगो ॥

यहाँ हमें हर जीव की भक्ति की ओर उन्मुख भाव-धारा का पावन रूप दृष्टि-गोचर होता है। ऐसा लगता है, मानो हर एक जीव तुलसी के शब्दों में अपने लिए अविचल हरि-भक्ति की याचना कर रहा है। इस प्रकार उन्होंने अपने इस महान् जीवन को प्रत्यक्ष और परोक्ष—दोनों ही रूपों में इतनी कुशलता के साथ चित्रित किया है कि उनमें कहीं भी विषमता या शिथिलता का आभास नहीं मिलता।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, तुलसी की भक्ति-भावना लोक-कल्याणार्थ है और वह उनकी व्यक्तिगत व्यथा और वेदना की भूमि से उठकर समस्त विश्व की पीड़ा का रूप धारण करने के लिए आगे बढ़ी है। अतः तुलसी ने युग के जो कटु अनुभव किए थे, उनकी अभिव्यक्ति भी विनयपत्रिका की रचना का गौण उद्देश्य बन गया है। अतः यह कहना सत्य ही है कि "अपनी दारिद्रय-पूर्ण, करुण, असहाय, निरुपाय दशा को लेखनी-बद्ध करके भगवान् की कृपार्चना ही 'विनयपत्रिका' का मूल आशय है। यह दशा युग के प्रतिनिधि सन्त तुलसीदास की है, इसीलिए परोक्ष रूप से सार्वजनीन है। अतः विनयपत्रिका की टेर में एकत्व में अनेकत्व प्रदर्शित करने की शक्ति है और भिन्नत्व में अभिन्नत्व उत्पन्न करने की क्षमता। वस्तुतः विनयपत्रिका के प्रयोजन में गोस्वामी जी की अपनी दुख-गाथाओं अथवा पीड़ाओं का संग्रह अपेक्षित नहीं है, वरन् उसमें सर्वजन के दु:खों, लोक की पीड़ाओं तथा यातनाओं के विशद चित्रण की भावना अन्तर्निहित है।"

सारांश रूप में अन्त में यही कहा जा सकता है कि तुलसी ने विनयपत्रिका में लोक की वेदना को अपनी वेदना बनाकर व्यक्त किया है। ऐसा करने में उनका मुख्य उद्देश्य है—लोक-जीवन में आनन्द का वातावरण पैदा कर भक्ति के मार्ग से जागतिक जीवों को मोक्षगामी बनाना। तुलसी ने विनयपत्रिका में भगवान् राम की अनन्य भक्ति की, एतदर्थ विस्तार से अभिव्यक्ति की है।

प्रश्न २७—'विनयपत्रिका' में तुलसी की जो भक्ति-भावना व्यक्त हुई है, उसकी 'भ्रमरगीत' के रचयिता सूर की भक्ति-भावना से संक्षेप में तुलना कीजिए।

उत्तर—तुलसी और सूर—दोनों ही भक्त-कवि थे। दोनों ने क्रमशः राम और कृष्ण को आराध्य मानकर काव्य-रचना की है। दोनों भगवान् के निर्गुण रूप में भी विश्वास करते थे, किन्तु भक्ति के लिए वे सगुण ईश्वर को ही स्वीकार करते थे। राम और कृष्ण को दोनों कवियों ने उसी ईश्वर का लीलावतार माना था। उनकी दृष्टि में जो ब्रह्म अव्यक्त, अनादि, अजन्मा और निर्गुण है, वही जब लीला करना चाहता है, तब धराधाम पर अवतीर्ण होता है। ब्रह्म की सबसे बड़ी लीला तो समस्त जड़-चेतनमय सृष्टि है, जो उसी के विराट रूप की अभिव्यक्ति है। इसी सृष्टि में जब पाप बढ़ जाते हैं तब वह ब्रह्म अवतार लेकर पापात्माओं का संहार करता है।

दोनों कवि ऐसे ही लीलावतारी ब्रह्म के उपासक हैं, क्योंकि वह साकार होने के कारण भक्ति द्वारा प्राप्य है; साथ ही उसका एक लोक मङ्गलकारी रूप भी है। अतः दोनों कवियों का उपास्य 'ब्रह्म' का ऐसा रूप है, जिसकी प्राप्ति में दोनों ने स्वार्थ एवं परार्थ की पूर्ति का दर्शन किया है।

तुलसी ने विनयपत्रिका की रचना करके अपने आराध्य भगवान् राम को कलियुग के विरुद्ध शिकायत सुनाई। स्वयं तो कलि की यातनाओं से पीड़ित हैं ही, साथ ही वे लोक-जीवन की पीड़ा का भी अनुभव कर रहे हैं। अतः सभी देवताओं को प्रसन्न करते हुए वे राम के दरबार में अपना प्रार्थना-पत्र ले पहुँचते हैं, वहाँ पहुँच कर वे विभिन्न प्रकार से आत्म-हीनता, आत्म-ग्लानि, आत्म-व्यथा आदि का वर्णन करते हैं, अपने पथ-भ्रष्ट होने का कारण भी बतलाते हैं और फिर अपनी अनन्य-भक्ति का परिचय देते हुए अपने आराध्य से अनन्य भक्ति की याचना करके मोक्ष की आशा करते हैं। वे अनेक देवताओं की स्तुति करते हुए राम की शरण में पहुँचे हैं, किन्तु वे देवता उनके उपास्य नहीं हैं, उपास्य तो एकमात्र राम हैं। उन्होंने प्रत्येक देवता से भी राम की भक्ति की याचना की है। इस प्रकार तुलसी की भक्ति-भावना का एक अनिश्चित रूप मिलता है। उनकी भक्ति में चातक की अनन्यता का आदर्श निहित है; वे कहते हैं—

> राम राम रटु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।
> रामनाम-नवनेह मेह को, मन ! हठि होहि पपीहा ॥
> सब साधन-फल कूप-सरित-सर-सागर-सलिल निरासा।
> रामनाम-रति स्वाति-सुधा सुभ-सीकर प्रेम पियासा ॥
> गरजि-तरजि पाषान बरषि पबि, प्रीति परखि जिय जानै।
> अधिक अधिक अनुराग उमँग उर, पर परमिति पहिचानै ॥
> रामनाम-गति रामनाम-मति, रामनाम-अनुरागी।
> ह्वै गये हैं, जे होहिंगे, त्रिभुवन तेइ गनियत बड़भागी ॥
> एक अंग मग अगम गवन कर, बिलमु न छिन-छिन छाहैं।
> तुलसी हित अपनो दिसि, निरुपधि नेम निबाहैं ॥

सूर ने 'भ्रमरगीत' की रचना एक विवाद को लेकर की है। वह विवाद है—निराकार और साकार की उपासना का। वे निर्गुण-निराकार में विश्वास करते हुए भी उसे भक्ति द्वारा ग्राह्य नहीं मानते। वे उसे अव्यक्त और

अनादि है वही उनकी दृष्टि में अवतार लेता है । वल्लभाचार्य के मतानुसार वह ब्रह्म शङ्कराचार्य का 'आध्यात्मिक ब्रह्म' नहीं, अपितु उससे भी एक श्रेणी उच्च आधिदैविक ब्रह्म है, जो 'सच्चिदानन्द' कहलाता है । वह लीला की इच्छा से अपनी शक्ति के द्वारा 'सत्' रूप जगत्, एवं 'सत् चित्' रूप जीव की उत्पत्ति करता है । वह स्वयं सत्, चित् एवं आनन्दमय होने के कारण गोलोक में मुक्तात्माओं के साथ लीला-विहार करता है । धराधाम पर गोकुल उसका गोलोक, गोपियाँ मुक्त जीवात्माएँ तथा श्रीकृष्ण उसी ब्रह्म के लीलावतार हैं । अतः गोकुल में की गई श्रीकृष्ण की जो लीलाएँ हैं, वे उसी ब्रह्म की लीलाएँ हैं ।

इस प्रकार वह आधिदैविक ब्रह्म ज्ञान और योग के द्वारा प्राप्य नहीं है, अपितु प्रेम और भक्ति के द्वारा प्राप्य है । यही विवाद का वह अन्त है, जो भ्रमरगीत का प्रतिपाद्य विषय है । इस प्रकार सूर ने 'भ्रमरगीत' में केवल भक्ति-भावना की ही अभिव्यक्ति नहीं की है, भक्ति के महत्त्व एवं मार्ग का भी प्रतिपादन किया है । उनके भ्रमरगीत का यह सिद्धान्त-पक्ष इतना स्पष्ट है कि भावना-पक्ष से अधिक प्रबल हो गया है । तुलसी की विनयपत्रिका में सूर के समान किसी सिद्धान्त के प्रतिपादन का आग्रह दिखाई नहीं देता; वे भक्ति के जिस मार्ग पर चल रहे हैं, उस पर उनको अपनी अटलता है और वही परोक्षतः उनका सिद्धान्त-पक्ष है । इस प्रकार की स्पष्ट उक्तियाँ हमें 'भ्रमरगीतसार' में तो अनेक मिलती हैं; किन्तु 'विनयपत्रिका' में एक भी नहीं—

> हमारे कौन जोग व्रत साधै ?
> मृगत्वच, भस्म, अधारि, जटा को, को इतनो अवराधै ।।
> जाकी कहूँ थाह नहिं पैए, अगम अपार अगाधै ।
> गिरिधर लाल छबीले मुख पर, इते बाँध को बाँधै ?
> आसन पवन बिभूति मृगछाला, ध्याननि को अवराधै ?
> सूरदास मानिक परिहरि कै, राख गाँठि को बाँधै ?

सूर की भक्ति-भावना में जहाँ ज्ञान का स्पष्टतः विरोध मिलता है, वहाँ तुलसी ने ज्ञान को अपनी भक्ति-भावना में प्रमुख स्थान दिया है । वे कहते हैं कि जब तक जीव को अपनी तथा जगत् की स्थिति का ज्ञान नहीं होता, तब

तक वह भक्ति-पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। इसीलिए वे बार-बार जीव को ज्ञान का आश्रय लेने को कहते हैं—

जागु जागु जीव जड़! जोहै जग जामिनी।
देह गेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी॥
सोवत सपनेहुँ सहै संसृति संताप रे।
बूड़यो मृग बारि, खायो जेवरी को साँप रे॥

तथा—

जग नभवाटिका रही है फल फूलि रे।
धुवाँ के से धौरहर देखि तू न भूलि रे॥

किन्तु यह ज्ञानावस्था भी तुलसी के मतानुसार जीव को तभी प्राप्त होती है, जबकि उस पर ईश्वर की कृपा होती है। इसीलिए उन्होंने कहा है—

हे हरि, कस न हरहु भ्रम भारी।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी॥

वस्तुतः सूर और तुलसी की भक्ति-भावना का यह आधारिक अन्तर उनके दार्शनिक विश्वासों की भिन्नता के कारण है। तुलसी ने शङ्कराचार्य के मायावाद पर किसी सीमा तक विश्वास किया है, किन्तु सूर उसके एकदम विरोधी हैं। तुलसी ने जहाँ विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों के निचोड़ पर अपनी भक्ति-भावना का रूप निर्धारित किया है, वहाँ सूर में वल्लभाचार्य के पुष्टि-सिद्धान्त की मान्यता प्रधान है। इसीलिए सूर के लिए गोकुल ही गोलोक है, परन्तु तुलसी के लिए गोकुल तो क्या, समस्त जगत् मिथ्या है। अतः जिस प्रकार सूर ने गोपी-भाव की भक्ति को स्वीकार किया है तथा सख्य-भाव की विनयावली प्रस्तुत की है, वैसी भक्ति-भावना तुलसी में नहीं है। सूर में यदि प्रेम की प्रधानता है, तो तुलसी में सेवा की प्रधानता है। सूर यदि भक्ति के क्षेत्र में आत्म-विस्मृति को प्रधानता देते हैं, तो तुलसी आत्म-बोध को। सूर में इसीलिए तुलसी जैसी अनन्यता नहीं है। और क्यों हो—सूर का भक्त तो भगवदनुग्रह प्राप्त होते ही गोलोक-विहारी के साथ आनन्द लीला करने का सीधा अधिकारी हो जाता है। वहाँ न तो किसी प्रकार के शील की आवश्यकता है और न मर्यादा की। यदि शील और मर्यादा ही शेष रहे तो फिर लीला-विहार किस प्रकार सम्भव हो सकता है?—'खेलत में को काको गोसैयाँ?' इसी से सूर

की गोपियाँ भक्ति करती हुई भी अपने आराध्य कृष्ण को सभी प्रकार की बुरी-भली बातें सुनाने का साहस कर लेती हैं, मनमाने उपालम्भ दे देती हैं—

काहे को गोपीनाथ कहावत ?
जों पै मधुकर कहत हमारे गोकुल काहे न आवत ?
सपने की पहिचानि जानि कै हमहि कलंक लगावत।
जो पै श्याम कूबरी रीझे, सो किन नाम धरावत।
ज्यों गजराज काज के औसर औरै दसन दिखावत ?
कहन सुनन को हमहैं ऊधो सूर अन्त बिरमावत।

तुलसी की भक्ति-भावना में इस प्रकार के उपालम्भों के लिए कोई स्थान नहीं है। वे अपने स्वामी को जो कुछ भी सुनाना चाहते हैं, वह बड़ी विनम्रता तथा निष्कपटता के साथ सुनाते हैं। वे अधिक-से-अधिक इतना ही कह सकते हैं—

जाउँ कहाँ, ठौर है कहाँ देव ! दुखित दीन को ?
को कृपालु स्वामी सारिखो राखै सरनागत
सब अंग बल-बिहीन को॥
गनिहि गुनहि साहिब लहै सेव समीचीन को।
अधन अगुन, आलसिनको पालिबो
फबि आयो रघुनायक नवीन को॥
मुख कै कहा कहौं ? बिदित है जी की प्रभु प्रबीन को।
तिहूँ काल, तिहूँ लोक में एक टेक रावरी
तुलसी से मन मलीन को॥

सूर में दास्य-भाव की मर्यादा का अभाव होने के कारण ही उनमें दैन्य, विनय, मर्यादा एवं शील का अभाव है, जिसका तुलसी की भक्ति भावना में प्राधान्य है। इसीलिए जहाँ सूर की भक्ति-भावना प्रेम-भावना की परिधि में कहीं-कहीं विशुद्ध लौकिकता का भी स्पर्श कर उठी है, वहाँ तुलसी की भक्ति भावना ज्ञान की परिधि में विशुद्ध आध्यात्मिकता के धरातल पर प्रतिष्ठित दिखाई देती है। यदि ध्यान से देखा जाय तो तुलसी की भक्ति भावना की यह विशेषता ही विनयपत्रिका को सन्तों का कण्ठहार बनाने का मुख्य कारण है, जबकि सूर की भक्ति-भावना की पूर्वोक्त विशेषता 'भ्रमरगीत' को रसिकों का कंठहार बनाने का आग्रह करते [illegible] भावना में [illegible] किए हुए है।

फिर भी यह तो मानना ही पड़ता है कि सूर की भक्ति में भावों की कोमलता एवं दिव्य प्रेम से गद्‌गद् हृदय की सरसता अधिक है। तुलसी की विनयपत्रिका में निस्सन्देह ऐसे पदों का एक दम अभाव है—

> नाहिन रह्यो मन में ठौर।
> नंदनंदन अछत कैसे आनिए उर और ?
> चलत, चितवत, दिवस जागत, सपन सोवत राति।
> हृदय तें वह स्याम मूरति, छन न इत-उत जाति।
> कहत कथा अनेक ऊधो, लोक लाभ दिखाय।
> कहा करौं मन प्रेम पूरन, घट न सिन्धु समाय।
> स्यामगात सरोज-आनन, ललित अति मृदु हास।
> सूर ऐसे रूप कारन, मरत लोचन प्यास।

तुलसी की भक्ति-भावना का रूप निखारने वाली पश्चात्ताप, दैन्य आदि की अनेक भावनाएँ हैं, जिनको विस्तार से विनयपत्रिका मे स्थान मिला है; यथा—

> कबहूँ मन विस्राम न मान्यो।
> निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इन्द्रिन तान्यो।
> जदपि विषय सँग सह्यो दुसह दुख, विषम जाल अरुझान्यो।
> तदपि न तजत मूढ़, ममतावस, जानत हूँ नहिं जान्यो।।
> जन्म अनेक किये नाना बिधि, कर्म-कीच चित सान्यो।
> होइ न बिमल बिवेक-नीर-बिनु, बेद पुरान बखान्यो।।
> निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों, हरषि हृदय नहिं आन्यो।
> तुलसिदास कब तृषा जाय, सर खनतहिं जनम सिरान्यो।।

सूर को भ्रमरगीत मे इस प्रकार के पश्चात्ताप, दैन्य आदि प्रकट करने की आवश्यकता प्रतीत नही हुई। कारण भी स्पष्ट है, सूर की भक्ति में मन के विग्रह की वैसी आवश्यकता नहीं, जैसी आवश्यकता तुलसी की भक्ति-भावना में रही है। सूर की गोपियाँ तो सदा अपने मन के सकेत पर नाचती रहती हैं। परन्तु ध्यान रखने की बात यह है कि वह 'मन' ससारोन्मुखी न होकर 'ईश्वरोन्मुखी' हो चुका है। अनुराग तो वहाँ है, परन्तु वह अनुराग जगत् के प्रति नहीं, अपितु सच्चिदानन्दावतारी भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति है। सूर की गोपियाँ श्रीकृष्ण का निर्निमेष भाव से पथ देखती रहती हैं— १०

ऊधौ ! अँखियाँ अति अनुरागी ।
इकटक मग जोवति अरु रोवति, भूलेहु पलक न लागी ॥
बिन पावस, पावस रितु आई, देखत हौ बिदमान ।
अबधौं कहा कियो चाहत हो ? छाँड़हु नीरस ग्यान ॥
सुनु प्रिय सखा स्यामसुन्दर के जानत सकल सुभाव ।
जैसे मिलें सूर प्रभु हम को, सो कछु करहु उपाय ॥

वस्तुत. सूर की भक्ति-भावना में यह मिलन-कामना ही प्रधान है। जीव गोलोक-बिहारी के लीलानन्द से वंचित हो गया है। उसी की प्राप्ति के लिए छटपटा रहा है। अत. विरह की छटपटाहट सूर की भक्ति-भावना में प्रधान है। तुलसी ने ज्ञान से अपने राम को प्राप्त कर लिया है—पहचान लिया है परन्तु केवल प्राप्त कर लेना पर्याप्त नहीं है। मोक्ष पाने के लिए तो उनकी कृपा चाहिए, जिसकी उन्होने बार-बार माँग की है—

जैसो हौं तैसो हौं राम ! रावरो जन जनि परिहरिये ।
कृपासिंधु कोसलधनी सरनागत-पालक
ढरनि आपनी ढरिये ॥

हौं तो बिगरायल और को, बिगरो न बिगरिये ।
तुम सुधारि आये सदा सबको सबही बिधि
अब मेरीयो सुधरिये ॥

जग हँसिहै मेरे संग्रहे, कत इहि डर डरिये ।
कपि केवट कीन्हें सखा जेहि सील सील सरल चित
तेहि सुभाउ अनुसरिये ॥

अपराधी, तउ आपनो तुलसी न बिसारिये ।
टूटियो बाँह गरे परें, फूटेहुँ बिलोचन
पीर होत हित करिये ॥

साराश यह है कि सूर और तुलसी की भक्ति-भावना में सिद्धान्त तथा भाव, दोनों दृष्टियों से पर्याप्त अन्तर है। वस्तुत. तुलसी की भक्ति-भावना में एक दास का हृदय बोल रहा है। सूर की भक्ति-भावना में दाम्पत्य का स्वर प्रधान है। तुलसी में शील, मर्यादा और ज्ञान की प्रधानता है, तो सूर में सौन्दर्य और प्रेम का आधिक्य है। मानवता और कोमलता की दृष्टि से व्यवहारीय.

सार' में व्यक्त भक्ति-भावना यदि रसिकों की वाणी है, तो दैन्य, भावुकता एवं अनन्यता की दृष्टि से तुलसी की भक्ति-भावना भक्तों का सात्विक स्वर है। दोनों का अपने-अपने क्षेत्र में समान महत्त्व है।

प्रश्न २८—'विनयपत्रिका में तुलसी की विचारधारा' शीर्षक पर एक निबन्ध लिखिए।

उत्तर—तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस, विनयपत्रिका, कवितावली, दोहावली, श्रीकृष्ण गीतावली, बरवै रामायण, जानकी मंगल, पार्वती मंगल आदि जितने काव्यों की रचना की है, उनमें उनकी 'विनयपत्रिका' का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस कृति में उनका पूर्ण कवि-रूप साकार हुआ है। अपने व्यक्तिगत जीवन की वेदना-व्यथा को लोक की वेदना-करुणा के साथ एकरूपता देकर उन्होंने कलियुग के विरुद्ध महाराजाधिराज भगवान् 'राम' के दरबार में अपनी विनयपत्रिका भेजी है। उन्होंने जीवन में जो कुछ अनुभव किया है, जो कुछ देखा, सुना और समझा है तथा जो कुछ सोचा है उन सबको 'विनयपत्रिका' के पृष्ठों में साकार कर दिया है। यही कारण है कि विनयपत्रिका केवल भावुकता के क्षणों में लिखी गई भक्ति के आवेश की अभिव्यंजिका काव्य-कृति-मात्र नहीं है, अपितु उसमें उनके प्रौढ़ मस्तिष्क का चिन्तन-पक्ष भी अत्यन्त विस्तार से अभिव्यक्त हुआ है। हम उसमें तुलसी को 'श्रीरामचरितमानस' के समान राम-कथा के जाल में उलझा नहीं पाते, अपितु आध्यात्मिक तत्त्व-ज्ञान में उतरकर समस्याओं का शोध करने वाले जीवों को दिग्दर्शन करा और अनुभव करके पूर्ण विश्वास के साथ राम-भक्ति का सुन्दर पथ निर्दिष्ट करते पाते हैं। यही कारण है कि आध्यात्मिक जीवों को उन्होंने विनयपत्रिका की विचार-धारा द्वारा एक ऐसी विचारधारा प्रदान की है जो उनके लिए कल्याणकारी बनकर के दर्शन में पूर्ण सहायक हो सकती है।

'विनयपत्रिका' में अभिव्यक्त तुलसी की विचारधारा का मूल केन्द्र—जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध का चिन्तन है। तुलसी मानते हैं कि जीव ब्रह्म का अंश है। वह भी ब्रह्म—अक्षर और अविनाशी है [illegible] [illegible] हो सकता है? [illegible] एक [illegible] है—[illegible] है [illegible] है—[illegible] [illegible] है। [illegible] है। [illegible] नहीं, [illegible] नहीं [illegible]

के नाश के लिए ज्ञान आवश्यक है। जब तक जीव को ज्ञान नहीं होता, तब तक वह भ्रमात्मक जगज्जाल में पड़ा विभिन्न दुख भोगता रहता है। तुलसी ने अपने इन विचारों को विनयपत्रिका के अनेक पदों में व्यक्त किया है; यथा—जीव हरि से पृथक् होकर जगत को अपना समझ बैठा है, यही उसके दुख का मूल कारण है—

जिय जब तें हरि तें बिलगान्यो।
तब तें देह गेह निज जान्यो॥
मायावस स्वरूप बिसरायो।
तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो॥

उसका यह दुख-भोग—उसके भ्रम के ही कारण है। वे कहते हैं कि जीव इस तथ्य को नहीं जानता है कि वह आनन्द-सिन्धु-ब्रह्म के मध्य निवास करने वाला उसका एक अंश है, इसलिए वह प्यासा मरता है; दुख भोगता है—

आनन्द सिन्धु-मध्य तव बासा।
बिनु जाने कत मरसि पियासा॥

× × ×

निज सहज अनुभव रूप तव
खल भूलि अब आयो तहाँ॥

संसार तो पूर्णतः मिथ्या है, अतः उसमें जीव को विश्वास नहीं करना चाहिए—

जग नभबाटिका रही है फल-फूलि रे।
धुवाँ के से धौर-हर देखि तू न भूलि रे॥

माया ने जीव को इस मिथ्या जगत में भुला दिया है, और इसीलि भयंकर दुख झेलता है—

माया बस स्वरूप बिसरायो।
तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो॥

वस्तुतः जीव का जागतिक अस्तित्व माया के कारण ईश्वर से केवल इतना भिन्न है कि एक (जीव) माया के अधीन है और दूसरा (ईश्वर) माया का पति है—

हौं जड़ जीव, ईस रघुराया।
तुम मायापति, हौं बस माया॥

तुलसी का विचार है कि यह माया तब तक जीव को नहीं छोड़ सकती; जब तक जीव को ज्ञान प्राप्त नहीं होता। भक्ति उसका दूसरा साधन है; अर्थात् पहले ज्ञान हो फिर भक्ति में मन लगे, तब जीव माया के जाल से छूट सकता है। परन्तु तुलसी का यह भी विचार है कि बिना हरि-कृपा के उस माया-भ्रम का नाश नहीं हो सकता—

ज्ञान भक्ति साधन अनेक, सब, सत्य, झूठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरि कृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन माहीं॥

और यह हरि-कृपा प्राप्त करने के लिए मन का निर्विकार होना आवश्यक है, क्योंकि जिसका मन मलिन है वह राम से अनुराग नहीं कर सकता। बिना अनुराग किए 'हरिकृपा' प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए तुलसी का विचार है कि जीव को अपने मन का परिशोधन कर डालना चाहिए। यदि अपना मन निर्विकार हो जाय तो द्वैतजन्य सांसारिक दुखों का अनुभव जीव को न हो—

जो निज मन परिहरै विकारा।

तुलसी का विचार है कि ऐसा तभी हो सकता है, जबकि प्रत्येक मनुष्य अपने मन को क्षण-क्षण पर सचेत करता रहे। उसे अपने मन को इस प्रकार बार-बार समझाते रहना चाहिए कि—

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अरु ही ते॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप, बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते॥
सुत बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते।
अंतहुँ तोहि तजेंगे पामर! तू न तजै अबही ते॥
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ, बिषय-भोग बहु घी ते॥

तुलसी का विचार है कि यह संसार अत्यन्त दुखपूर्ण है तथा विभिन्न प्रकार के मिथ्या आकर्षणों से भरा हुआ है। ईश्वर को प्राप्त करने के अनेक उलझनपूर्ण मार्ग चल रहे हैं। जीव उनमें भटकता हुआ दुख भोगता रहता है, तथा मुक्ति से दूर हटता जाता है। तुलसी का विचार है कि कलियुग में केवल राम की भक्ति इस दुखपूर्ण संसार से मुक्ति दिला सकती है। तीर्थ, व्रत, तप-

वास आदि करने से वे किसी को रोकते नहीं, परन्तु उनके विचार में राम क
भरोसा करने वाला ही जल्दी मुक्ति पाता है। जो इस संसार-सागर को पा
करना चाहता है, उसे तुलसी के विचार से राम-नाम रूपी जलयान पर सवा
हो जाना चाहिए। वे कहते हैं—

> नाहिन आवत आन भरोसो।
> यहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम-फलनि फरो सो।
> तप, तीरथ, उपवास, दान, मख, जेहि जो रुचै करो सो।
> पायेहि पै जानिबो करम-फल भरि-भरि वेद परोसो॥
> आगम-बिधि जप जाग करत नर, सरत न काज खरो सो।
> सुख सपनेहु न जोग-सिधि-साधन, रोग-वियोग धरो सो॥
> काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान विराग हरो सो।
> बिगरत मन सन्यास लेत जल नावत आम घरो सो॥
> बहु मत सुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।
> गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहि लागत राज डगरो सो॥
> तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिर-फिर पचि मरै मरो सो।
> रामनाम बोहित भव-सागर चाहै तरन तरो सो॥

तुलसी कलियुग में राम के नाम को कल्पवृक्ष के समान मानते हैं, वे कहते हैं—

> कलि नाम कामतरु राम को।
> दलनिहार दारिद दुकाल दुख, दोष घोर घन घाम को॥
> नाम लेत दाहिनो होत मन, बाम बिधाता बाम को।
> कहत मुनीस महेस महातम, उलटे सूधे नाम को॥
> भलो लोक-परलोक तासु जाके बल ललित ललाम को।
> तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकाम को॥

तुलसी का विचार है कि मनुष्य को किसी के प्रति भी श्रद्धा रहित नहीं होना चाहिए; किन्तु विश्वास एक 'राम' पर ही करना चाहिए। संसार में विभिन्न देवी देवताओं को भी श्रद्धा के पुष्प अर्पित करने चाहिए, परन्तु आत्मोद्धार की कामना केवल राम से ही करनी चाहिए। तुलसी ने अपने इसी विचार को विभिन्न देवों की स्तुति में प्रकट किया है। उन्होंने किसी भी देवता की भक्ति नहीं की, राम के चरणों में प्रेम ही, उनसे केवल यही याचना की

है। इसका कारण यह है कि वे राम को देवों का भी आराध्य मानते हैं। शिवजी को उन्होंने सबसे बड़ा दानी बतलाया है—'दानी कहुँ संकर सम नाहीं', फिर भी उन्होंने 'राम' की ही भक्ति उनसे भी माँगी है, क्योंकि उनके विचार से वे भी राम की भक्ति करके ही समर्थ दानी बने हैं। तुलसीदास का विचार है कि हमें ईश्वर की एक सत्ता में विश्वास करते हुए सभी मतों का समन्वय कर हरि-भक्ति के पथ पर अचल रहना चाहिए, खण्डन-मण्डन के चक्कर में पड़कर अपने भक्तिमार्ग से भ्रष्ट नहीं होना चाहिए। भक्त के मन की तुलसी के विचार से यह अवस्था अत्यावश्यक है—

> कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
> श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो॥
> जथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
> परहित-निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो॥
> परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
> बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन, नहिं दोष कहौंगो
> परि हरि देह-जनित चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
> तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि-भक्ति लहौंगो॥

हरि-भक्ति प्राप्त करने वाले व्यक्ति को तुलसी के विचार से जगत के समस्त जीवों में सम-भाव रखना चाहिए और इसके लिए उसे सदा पर-हित के कार्यों में लीन होना चाहिए। वे कहते हैं कि यदि मानव-शरीर प्राप्त करके परोपकार नहीं किया तो उसका जीवन व्यर्थ ही समझिए—

> काज कहा नर तनुधरि सार्‌यो।
> पर-उपकार सार स्रुति को जो सो धोखेहु न बिचार्‌यो।

उनका विचार है कि परोपकार जीवन का सबसे बड़ा फल है—

> तातें सप्तधातु निर्मित तनु करिय विचार।
> तेहि तनु केर एक फल कीजै पर उपकार॥
>
> × × ×
>
> परहित-निरत सो पारन बहुरि न व्यापत सोक।

तुलसी का विचार है कि मनुष्य को अपने शरीर को तुच्छ समझना चाहिए तथा परोपकार करते हुए किसी मत-मतान्तर के झंझट में न पड़कर राम-भक्ति करनी चाहिए। उनके विचार से मनुष्य के थोड़े-से असावधान होने

यह बाल्यावस्था, यौवनावस्था तथा वृद्धावस्था—तीनों का समय व्यर्थ निकल जाता है और अन्त में पश्चात्ताप करना पड़ता है। अतः समय से पूर्व ही उसे सचेत हो जाना चाहिए। तुलसी ने इस सम्बन्ध में विनयपत्रिका में लिखा है—

(१) खेलत खात लरिकपन गो चलि,
जोबन जुबतिन लियो जीत।

(२) लरिकाई बीती अचेत चित चंचलता चौगुनी चाय।
जोबन-जुर जुबती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन बाय॥

(३) जोबन जुबती सँग रँग रात्यो।
तब तू महामोह मद मात्यो॥
ताते तजी धरम मरजादा।
बिसरे तब सब प्रथम बिषादा॥

(४) बैसत ही आई बिरधाई।
जो तैं सपनेहु नाहिं बुझाई॥
सो प्रगट तनु जरजर जराबस ब्याधि-सूल सतावही।
सिर धुन इन्द्रिय-सक्ति प्रतिहत, बचन काहु न भावई॥

सारांश यह कि तुलसी ने विनयपत्रिका में जो विचारधारा व्यक्त की है, उसमें मनुष्य के सांसारिक रूप, जगत की नश्वरता, ईश्वर से सम्बन्ध, ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग आदि विषयक चिन्तन प्रधान है। उसमें यह बताने की चेष्टा की गई है कि संसार में किस प्रकार रहकर प्रत्येक जीव अपना उद्धार कर सकता है। तुलसी ने जगत को दुखमय एवं मिथ्या मानते हुए तथा मानव-जीवन को विभिन्न प्रकार की भावनाओं से मलिन एवं अस्थिर बताते हुए हरि-भक्ति का मार्ग निर्दिष्ट किया है। उनके विचारों में जगत् और जीवन की दुख-पूर्णता की मान्यता प्रधान है तथा ईश्वर एवं जीव की शाश्वत पवित्रता एवं एकता में विश्वास किया गया है। जीव के जागतिक मालिन्य को उन्होंने इन्द्रिय-विकारों एवं माया के दोषों पर आधारित माना है।

प्रश्न २९—काव्य-कला की दृष्टि से संक्षेप में विनयपत्रिका की आलोचना कीजिए।

उत्तर—कवि की भाव-सृष्टि का नाम 'काव्य' है। जिस प्रकार संसार का विधाता अत्यन्त कलापूर्ण अंगुलियों से अपनी सृष्टि को सजाता है, उसी प्रकार कवि भी अपनी पूर्ण कला का उपयोग अपने काव्य को सजीव बनाने में करता

है। वह अपने अनुभवों को भावों का रूप देता है, भावों की अभिव्यक्ति के लिए विषय चुनता है और भाषा का सहारा लेता है, भाषा की सुन्दरता के लिए अपनी कला-कुशलता को शैली-विशेष का रूप देता है, उसके लिए अलङ्कारों की योजना करता है तथा विषय को रोचक बनाकर अपने भावों को सर्व-ग्राह्य बनाता है। वह अपनी काव्य-सृष्टि के अन्तर्बाह्य रूप को सजाने के लिए ऐसे-ऐसे स्थानों से सामग्री का चयन करता है, जहाँ 'रवि' की पहुँच सम्भव नहीं। जब वह अपनी पूर्ण कला की अभिव्यक्ति करके अपने भावों को आस्वाद्य बना देता है, तब वह स्वयं उस काव्य-सृष्टि का रसास्वाद करता है और पाठकों या श्रोताओं को भी रस का आस्वादन कराता है। जिस कवि की प्रतिभा जितनी महान् होती है, वह उतनी ही महान् कला का आधार अपनी कृति को प्रदान करता है। महाकवि तुलसीदास हिन्दी के एक अद्भुत प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे। नाना पुराण निगमागम तक उनकी पहुँच थी तथा पूर्ववर्ती अनेक श्रेष्ठ काव्यों का उन्होंने श्रवण या पारायण किया था। फलतः उनकी प्रतिभा को वह शक्ति प्राप्त हो गई थी, जिसके द्वारा उन्होंने 'श्रीरामचरित-मानस' जैसे श्रेष्ठ प्रबन्ध-काव्य एवं 'विनयपत्रिका' जैसे अद्भुत मुक्तक काव्य की रचना की। हम प्रथम कृति में उनकी प्रबन्ध-कला-कुशलता का जैसा निखरा हुआ रूप पाते हैं, वैसा ही उत्कृष्ट कला-सौन्दर्य हमें उनकी दूसरी मुक्तक रचना में मिलता है।

भाव—विनयपत्रिका में भक्ति-भावना की विभिन्न रूपों में अभिव्यञ्जना हुई है। निर्वेद उसका प्रधान भाव है, जो विभिन्न संचारी भावों से परिपुष्ट होता हुआ स्थायीभाव की अवस्था को पहुँचा है। प्रारम्भ से अन्त तक तुलसी ने [illegible] विनय, दैन्य, आत्मग्लानि, अधीरता, शरण कामना, [illegible] आदि भावों को विभिन्न रूपों में व्यक्त किया है। उनके आत्म-निवेदन में सर्वत्र उनके हृदय की निश्छलता का दर्शन होता है। उनके हृदय में कलियुग के [illegible] के कारण जो व्यथा है, उसको उन्होंने निस्संकोच भाव से व्यक्त किया है तथा विभिन्न देवी-देवताओं की श्रद्धापूर्वक स्तुति करके उनसे राम-भक्ति की याचना की है। वस्तुतः विनयपत्रिका में तुलसी [illegible] का [illegible] रूप चित्रित हुआ है। किसी भी पद को उठाकर देख लीजिए, ऐसा प्रतीत होता है—मानो कवि अपने हृदय को [illegible] को भिन्न भिन्न [illegible] कर देना चाहता है। एक उदाहरण लीजिए—

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी॥
जो संपति दस सीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं।
सो संपदा विभीषन कहँ अति सकुच-सहित हरि दीन्हीं॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करै कृपानिधि तेरो॥

विषय—तुलसी ने अपने भक्ति-भावो को अभिव्यक्त करने के लिए प्रमुख देवताओ, गगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, भरत, शत्रुघ्न तथा सीता राम की स्तुति को 'विनयपत्रिका' की विषय-वस्तु मे सम्मिलित किया है। उसमे हमे प्रारम्भ से अन्त तक भावो के विकास का एक क्रम मिलता है। श्रीराम की अवतार-कथा भी सक्षेप मे कही-कही स्थान पा गई है। परन्तु यह सब होते हुए भी 'विनयपत्रिका' एक मुक्तक काव्य ही है। एक आवेदन-पत्रिका के समस्त विधान का अनुसरण करके भी तुलसी ने उसमे अपने हृदय के भावो को मुक्तक रूप मे ही व्यक्त किया है, किसी कथा का सहारा नही लिया। वे कलियुग से पीड़ित होकर राम के दरबार मे अपनी विनयपत्रिका प्रेषित करते हैं और उसी मे उन्होने अपने उन सब भावो को लिख दिया है, जिनकी चर्चा पीछे की जा चुकी है। इस प्रकार तुलसी के पास अभिव्यक्त करने के लिए जो भाव हैं, उनको उन्होने एक सुन्दर विषय का रूप भी दिया है, जो विनय की पत्रिका का आकार ग्रहण कर पाठको का कण्ठहार बन गया है।

नायक—काव्य मे कवि अपनी कला की योजना जिस उद्देश्य से करता है, उसका भोक्ता कोई नायक भी उसे प्रस्तुत करना पड़ता है। वस्तुतः प्रबन्ध-काव्य मे जो नायक होता है वह कथावस्तु को लेकर चलता है और वही उसके फल का भोक्ता भी होता है। परन्तु मुक्तक काव्य मे, जिसमें भावो की प्रधानता होती है, भावों को लेकर चलने वाला कवि स्वयं होता है और वही उसका भोक्ता होता है। विनयपत्रिका मे भी हमें ऐसे नायक का अभाव नहीं मिलता। तुलसी स्वय अपनी भाव-गंगा के भगीरथ हैं और वे ही उसके भक्तिफल के भोक्ता भी हैं। उन्हें हम काव्य के प्रारम्भ मे सिद्धि-दाता गणेश से राम-भक्ति की याचना करते देखते हैं—

गाइये गनपति जगवन्दन । संकर-सुवन-भवानी-नन्दन ॥
सिद्धि-सदन, गजबदन विनायक । कृपा-सिंधु, सुन्दर सब लायक ॥
मोदक-प्रिय मुद-मंगल-दाता । विद्या-वारिधि, बुद्धि विधाता ॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहिं रामसिय मानस मोरे ॥

और मध्य में अनेक पदों में राम के पास पहुँच, इस प्रकार विनय करते हुए पाते हैं—

हौं सब बिधि राम, रावरो चाहत भयो चेरो ।
ठौर ठौर साहिबी होत है ख्याल काल कलि केरो ॥
काल-कर्म-इन्द्रिय-विषय गाहकगन घेरो ।
हौं न कबूलत, बाँधि कै मोल करत करेरो ॥
बन्दि-छोर तेरो नाम है बिरुदैत बड़ेरो ।
मैं कह्यो तब छल-प्रीति कै माँगि उर डेरो ॥
नाम ओट अब लगि बच्यो मलजुग जग जेरो ।
अब गरीब जन पोषिये पायबो न हेरो ॥
जेहि कौतुक बक स्वान को प्रभु न्याव निबेरो ।
तेहि कौतुक कहिये कृपालु 'तुलसी है मेरो ॥'

तथा अन्त में हम उन्हें अपनी भक्ति का फल भोगते भी देखते हैं। राम ने उनकी पत्रिका को पढ़कर उन्हें अपना लिया है, देखिए—

बिहँसि राम कह्यो 'सत्य है सुधि मैं हूँ लही है ।'
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की,
परी रघुनाथ हाथ सही है ।

मुक्तक-काव्यों में नायक का निर्वाह बहुत कम मिलता है। परन्तु तुलसी ने विनयपत्रिका के मुक्तक क्षेत्र में भी इस सम्बन्ध में अपनी पूर्ण कला-कुशलता का परिचय दिया है।

अन्तर्बाह्य प्रकृति

विनयपत्रिका में तुलसी ने मानव-स्वभाव के विभिन्न रूपों का आत्म-ग्लानि आदि के द्वारा विस्तार से दिग्दर्शन कराया है। मनुष्य बाल्यावस्था, यौवन एवं बुढ़ापा खा-पीकर और खेलकर खो देता है, किन्तु जब उसे चेत होता है तब वह विभिन्न प्रकार से पश्चात्ताप करता है, आत्म-ग्लानि में दबता है तथा

भूधरं सुन्दरं श्रीवरं, मदन-मद-मथनं सौन्दर्य-सीमातिरम्यं ।
दुष्प्राप्य, दुष्प्रेक्ष्य, दुस्तर्क्य, दुष्पार, संसारहर सुलभ मृदुभावगम्य ॥

(ख) सरल भाषा का उदाहरण—

काहे को फिरत मूढ़ मन धायो ।
तजि हरिचरन-सरोज सुधा-रस, रविकर-जल लय लायो ॥
त्रिजग देव नर असुर अपर जग, जोनि सकल भ्रमि आयो ।
गृह बनिता सुत बन्धु भये बहु, पितु मातु जाये जिन्ह आयो ॥

शैली

विनयपत्रिका में तुलसी ने सर्वत्र 'पद' की शैली का प्रयोग किया है । प्रत्येक पद राग-रागनियों पर खरा उतरता है । उसमें उन्होंने संगीत-शास्त्रों का भी अद्भुत समन्वय किया है । हम सभी पदों को संगीत के वाद्य-यन्त्रों पर गा सकते हैं और भावों का पूर्ण आनन्द ले सकते हैं । यह इस कृति की शैली की एक प्रशंसनीय विशेषता है जिससे इसमें पर्याप्त रोचकता आ गई है ।

अलंकार-योजना

विनयपत्रिका में तुलसी ने बहुत स्वाभाविक रूप में अलङ्कार-योजना की है । भाषा और भाव—दोनों को उन्होंने अलङ्कार का प्रयोग करके सौन्दर्य प्रदान किया है । अर्थालङ्कारों में उपमा, रूपक, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] आदि का प्रयोग अधिक हुआ है । शब्दालङ्कारों में अनुप्रास का बाहुल्य है । कुछ अलङ्कारों के उदाहरण देखिए—

शब्दालङ्कार—

[illegible] है ।
[illegible] है ।
[illegible] है ।
[illegible] है ।

इन पंक्तियों में [illegible] है ।
[illegible] है ।

[illegible] अलङ्कार—

[illegible] ।
[illegible] ।

मधुरं सुन्दरं धीवरं, मदन-मन-मथनं सौन्दर्य-सीमातिरम्यं।
दुष्प्राप्य, दुष्प्रेक्ष्य, दुस्तर्क्य, दुष्पार, संसारहर सुलभ मृदुभावगम्यं॥

(ख) सरल भाषा का उदाहरण—

काहे को फिरत मूढ़ मन धायो।
तजि हरिचरन-सरोज सुधा-रस, रविकर-जल लय लायो॥
त्रिजग देव नर असुर अपर जग, जोनि सकल भ्रमि आयो।
गृह बनिता सुत बन्धु भये बहु, पित मातुजा हिआयो॥

शैली

विनयपत्रिका में तुलसी ने सर्वत्र 'पद' की शैली का प्रयोग किया है। प्रत्येक पद राग-रागनियों पर खरा उतरता है। उसमें उन्होंने कीर्ति-शब्दों का भी अद्भुत समन्वय किया है। हम सभी पदों को संगीत के वाद्य-यन्त्रों पर गा सकते हैं और भावों का पूर्ण आनन्द ले सकते हैं। यह इस कृति की शैली की एक प्रशंसनीय विशेषता है जिससे इसमें पर्याप्त रोचकता आ गई है।

अलंकार-योजना

विनयपत्रिका में तुलसी ने बहुत स्वाभाविक रूप में अलङ्कार-योजना की है। भाषा और भाव—दोनों को उन्होंने अलङ्कार का प्रयोग करके सौन्दर्य प्रदान किया है। अर्थालङ्कारों में उपमा, रूपक, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि का प्रयोग अधिक हुआ है। शब्दालङ्कारों में अनुप्रास का बाहुल्य है। कुछ अलङ्कारों के उदाहरण देखिए—

[illegible] अलङ्कार—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

इन पंक्तियों में [illegible] और अनुप्रास [illegible] का अनुपम चमत्कार है। [illegible]

उत्प्रेक्षा अलङ्कार—

[illegible]
[illegible]

जातरूप मनि-जटित मनोहर, नूपुर जन-सुखदाई।
जनु हर-उर हरि बिबिध रूप धरि, रहे बर भवन बनाई॥
कटितट रटति चारु किंकिनि-रव, अनुपम बरनि न जाई।
हेम जलज-कल-कलित-मध्य जनु मधुकर मुखर सुहाई॥

× × ×

गज-मनिमाल बीच भ्राजत कहि जाति न पदक-निकाई।
जनु उडुगन-मण्डल बारिदपर, नवग्रह रची अथाई॥

जैसा कि उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है, विनयपत्रिका की अलंकार-योजना में सर्वत्र भाव, भाषा एवं अलंकारों का अद्‌भुत साम्य मिलता है।

रस

सभी उपकरणों का प्रयोग करके तुलसी ने 'निर्वेद' स्थायीभाव को रस-दशा को पहुँचाया है। यद्यपि हास्य वीर आदि अन्य रसों की भी यत्र-तत्र अभिव्यक्ति मिल जाती है, तथापि शान्त रस प्रधान है। प्रारम्भ से अन्त तक विनयपत्रिका मे शान्त रस के अनुकूल विभिन्न प्रकार की भाषा की योजना की गई है; एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ कृपालु कृपा तें, संत-सुभाव गहौंगो॥
जथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरन्तर मन-क्रम-वचन नेम निबहौंगो॥
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, नहिं दोष कहौंगो॥
परिहरि देह जनित चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरि भक्ति लहौंगो॥

उद्देश्य

काव्य के सभी उपकरणो का सहारा लेकर विनयपत्रिका को तुलसी ने एक सजीव कृति बना दिया है। कोई भी कला तब तक पूर्णता नही प्राप्त कर सकती, जब तक वह किसी उद्देश्य की पूर्णता को प्राप्त न कर ले। 'कला को कला के लिए' मानने में भी कला का कोई उद्देश्य होता ही है। अतः प्रश्न यह रह जाता है कि—उसकी अभिव्यक्ति मे कलाकार को कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है। तुलसी ने विनयपत्रिका मे आत्मोद्धार के साथ-साथ लोक-हित को भी

अपनी कला का उद्देश्य बनाया है और इस कार्य में वे पूर्णतः सफल हुए हैं। जागतिक जीवों को हरि-भक्ति के सुन्दर सर्वोच्च सोपान पर आरोहण करा के अमर आनन्द का लाभ कराना—विनयपत्रिका का लोक-हित सम्बन्धी पक्ष है और अपने आराध्य 'राम' के प्रति अनन्य भक्ति का परिचय देते हुए आत्म-निवेदन करना—आत्मोद्धार सम्बन्धी पक्ष है। उनको अपने इन दोनों ही उद्देश्यों की अभिव्यक्ति में पूर्ण सफलता मिली है।

निष्कर्ष यह है कि विनयपत्रिका काव्य-कला की कसौटी पर एक उत्कृष्ट कृति सिद्ध होती है। उसमें हमें तुलसी का कला-सम्बन्धी एक पूर्ण दृष्टिकोण अभिव्यक्त मिलता है। भाव, भाषा, छन्द, अलङ्कार-योजना, अन्तर्बाह्य प्रकृति, रस, उद्देश्य आदि विभिन्न दृष्टियों से हम उसमें कवि की अद्भुत सफलता का दर्शन करते हैं। यही कारण है कि हिन्दी-साहित्य में 'विनयपत्रिका' का अत्यन्त उच्च स्थान है एवं काव्य-रसिक तथा भक्त—दोनों उसे समान अभिरुचि से पढ़ते हैं।

प्रश्न १०—'विनयपत्रिका' में तुलसी की समन्वयात्मक प्रतिभा का जो रूप उपलब्ध है, उसे आवश्यकतानुसार उद्धरण देते हुए स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—महाकवि तुलसीदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। उनकी विलक्षण प्रतिभा ने 'श्रीरामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' दो ऐसे रत्न हिन्दी-साहित्य को प्रदान किए हैं, जिनकी तुलना में ठहरने वाली बहुत कम रचनाएँ अभी तक देखने में आई हैं। इन दोनों ग्रन्थों में तुलसी ने जीवन का पूर्ण रूप प्रस्तुत किया है। काव्य और जीवन का ऐसा समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है। वस्तुत. तुलसी की समस्त कीर्ति का एक प्रमुख कारण उनकी वह समन्वयात्मक प्रतिभा ही है जो उनकी कविता का प्राण है। 'श्रीरामचरित-मानस' में तो हम जीवन के सभी मुख्य क्षेत्रों में समन्वय की चेष्टा फलित होते देखते हैं, किन्तु 'विनयपत्रिका' में भी समन्वयात्मक प्रतिभा की अभिव्यक्ति का अभाव नहीं है। सामान्यत. हम उसमें तुलसी के समन्वय-सम्बन्धी दृष्टिकोण को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत समझ सकते हैं—

(१) प्रबन्ध और मुक्तक शैलियों का समन्वय;
(२) काव्य और सङ्गीत का समन्वय;
(३) व्यक्ति और समाज का समन्वय;
(४) भक्ति और दर्शन का समन्वय,

(५) विभिन्न वादों का समन्वय;
(६) आदर्श और यथार्थ का समन्वय;
(७) काव्य और जीवन का समन्वय तथा
(८) साहित्यिक भाषा और जन-भाषा का समन्वय।

(१) प्रबन्ध और मुक्तक शैलियों का समन्वय

तुलसी ने 'विनयपत्रिका' में प्रबन्ध और मुक्तक शैलियों का व्यापक रूप में समन्वय किया है। हम उसमें प्रारम्भ से अन्त तक प्रबन्ध-योजना भी पाते हैं और मुक्तक-योजना भी देखते हैं। पाठक अपनी रुचि के अनुकूल शैली में उनके आनन्द का अनुभव कर सकता है। प्रबन्ध के अनुकूल तुलसी ने विनयपत्रिका को एक 'पत्र' के रूप में लिखा है जिसमें एक क्रमबद्ध भाव-योजना है। वे सबसे पहले गणेश जी की स्तुति के रूप में 'मंगलाचरण' लिखते हैं, फिर देवताओं की स्तुति द्वारा विषय-प्रवेश करते हैं और संक्षेप में प्रशंसा के साथ राम की अवतार-कथा लिखते हैं। तत्पश्चात् उनके सम्मुख उपस्थित होकर वे अपनी व्यथा सुनाते और उनकी कृपा की याचना करते हैं। अन्त में वे राम की कृपा पाकर कृत-कृत्य हो जाते हैं। इस प्रकार पूर्ण पुस्तक को पढ़ने से प्रबन्ध जैसा आनन्द आता है। जब हम उनकी छन्द-योजना को देखते हैं और प्रत्येक छन्द पृथक्-पृथक् पूर्ण भाव-खण्ड व्यक्त होते पाते हैं, तो स्पष्टतः उसमें मुक्तक काव्य का रूप दिखाई दे जाता है। यही है—तुलसी की प्रबन्ध और मुक्तक के समन्वय की वह अद्भुत प्रतिभा, जो 'विनयपत्रिका' मे साकार हुई है।

(२) काव्य और संगीत का समन्वय

तुलसी ने विनयपत्रिका मे दूसरा समन्वय 'काव्य और सङ्गीत' के क्षेत्र मे किया है। जहाँ एक ओर उन्होने भाव, भाषा, अभिव्यक्ति आदि की दृष्टियो से उसमे विलक्षण काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है, वहाँ दूसरी ओर उसमे उनकी संगीतज्ञ की प्रतिभा भी प्रत्यक्ष हुई है। प्रत्येक छन्द काव्य और सङ्गीत के अद्भुत समन्वय का नमूना है। हम सभी पदों को किसी-न-किसी राग मे बाँध और गा सकते है। सामान्यतः काव्य की सरस भूमिका मे तुलसी ने कल्याण (पद २, ४), कान्हरा (पद २४, २०४), केदारा (४१, २१२), भैरवी (पद १९८), आसावरी (पद १८३), गौरी (पद ४५, १८६) आदि कई रागों का प्रयोग किया है। यही कारण है कि विनयपत्रिका को पढ़कर जैसा रसास्वादन कर सकते हैं, ठीक वैसा ही आनन्द हम उसे रागों मे गाकर भी प्राप्त

केसव कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना विचित्र अति, समुझि मनहिं मन रहिये॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटइ न, मरइ भीति, दुख पाइय इहि तनु हेरे॥
रविकर नीर बसै अति दारुन, मकर रूप तेहि माहीं।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै॥

(५) विभिन्न वादों का समन्वय

उपर्युक्त छन्द में अभिव्यक्त विचार जहाँ एक ओर कवि की भक्ति और दर्शन-सम्बन्धी समन्वयात्मक चेष्टा का प्रतिफलन है, वहाँ दूसरी ओर हम उनकी विभिन्न वादों के समन्वय की चेष्टा भी प्रत्यक्षतः व्यक्त होते देखते हैं। वस्तुतः तुलसी ने विनयपत्रिका में अन्य कई पदों में तथा भावों एवं विचारों की योजना में भी विभिन्न वादों के समन्वय की अपनी चेष्टा प्रकट की है। अनेक देवताओं की स्तुति से जहाँ हम तुलसी में बहुदेववाद के प्रति श्रद्धा देखते हैं, वहाँ उन सबसे एक 'राम' की ही भक्ति माँगने देखकर हम उनको एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा में भी तल्लीन पाते हैं। वस्तुतः बड़ी कुशलता से, तुलसी ने बहुदेववाद एवं एकेश्वरवाद का समन्वय किया है। इसी प्रकार उन्होंने ईश्वर के सगुण और निर्गुण सम्बन्धी विवादों का भी समन्वय के आधार पर अन्त कर दिया है। दोनों ही रूपों में ईश्वर को देखते हैं और इस प्रकार विनयपत्रिका सगुण-वाद एवं निर्गुणवाद के समन्वय की प्रतीक बन गयी है। समन्वय की भावना से प्रेरित होकर तुलसी कहते हैं—

अनघ अविछिन्न सर्वग्य, सर्वेस, खलु, सर्वतोभद्र दाताऽसमाकं।
प्रनतजन खेद-विच्छेद-विद्या-निपुन नौमि श्रीराम सौमित्र साकं॥

(६) आदर्श और यथार्थ का समन्वय

प्रायः तुलसी के विरोधी आलोचक उन पर कोरा आदर्शवादी होने का आरोप लगाकर उन्हें जीवन की भूमि से दूर कर कल्पनाजीवी कवि बतलाते हैं परन्तु वास्तव में यह आरोप निराधार तथा पक्षपातपूर्ण है। विनयपत्रिका जैसी भक्ति-सम्बन्धी कृति में उन्होंने आदर्श और यथार्थ का समन्वय किया है।

एक ओर तो उन्होंने बहुत ऊँचे स्तर पर भगवान् राम के गुणों का आदर्श रूप में उद्घाटन किया है और दूसरी ओर उन्होंने जीव की व्यक्तिगत वेदना का उद्घाटन करके समाज की यथार्थ परिस्थितियों का भी चित्रण किया है। निम्नांकित पंक्तियाँ तुलसी के यथार्थदर्शी उस दृष्टिकोण की सूचना देती हैं, जो अन्य पदों में अभिव्यक्त उनके आदर्शवादी दृष्टिकोण के साथ समन्वय स्थापित करता है—

(अ) आस्रम बरन धरम बिरहित जग, लोक-बेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पाप रत, अपने-अपने रंग रई है।
सांति सत्य सुभरीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है।

(ब) मेरे ब्याह न बरेखो जाति-पाँति न चहत हौं।

(स) फिर्यो ललात बिनु नाम उदर लगि दुखउ दुखित मोहि हेरे।

(द) जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस—
खाए टूक सबके बिदित बात दुनी सो।

(७) काव्य और जीवन का समन्वय

तुलसी ने विनयपत्रिका में काव्य को जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक धरातल पर इस प्रकार भक्ति-भावना के साथ प्रस्तुत किया है कि स्वतः उसमें काव्य और जीवन का समन्वय उपस्थित हो गया है। उन्होंने प्रत्येक पद में जीवन की ऐसी अखण्ड चेतना भर दी है कि काव्य स्वतः जीवन बन गया है। जो लोग यह कहते हैं कि 'कला केवल कला के लिए है' उन्हें विनयपत्रिका पढ़कर अपनी राय बदलनी पड़ती है और यह कहना पड़ता है कि वस्तुतः कला जीवन के लिए है। जीवन और काव्य में विच्छेद नहीं।

विनयपत्रिका का कवि कितनी सहज भावना के साथ काव्य की भूमि पर सर्व-स्वीकार जीवन की कामना करता है—

कबहुँक हौं यह रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु कृपा तें, संत सुभाव गहौंगो॥
जथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरन्तर मन-क्रम-बचन नेम निबहौंगो॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि, तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, नहिं दोष कहौंगो॥

परिहरि देह-जनित-चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि भक्ति लहौंगो ॥

(८) साहित्यिक और जन-भाषा का समन्वय

तुलसी ने विनयपत्रिका में अपनी समन्वयात्मक प्रतिभा का परिचय भाषा के क्षेत्र में भी दिया है । उन्होंने उसे विद्वानों एवं सामान्य जनों के लिए समान रूप से उपयोगी बनाने के लिए उसमें संस्कृत गर्भित तथा बोलचाल की शब्दावली से युक्त दोनों प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है । यह उनकी समन्वय प्रवृत्ति का ही फल है ।

(क) साहित्यिक भाषा का एक उदाहरण देखिए—

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन, हरन भवभय-दारुन ।
नवकंज-लोचन, कंज-मुख, करकंज, पदकंजारुनं ॥
कन्दर्प-अगनित-अमित-छवि, नवनील नीरद सुन्दरं ।
पटपीत मानहुँ तड़ित रुचि, सुचि नौमि जनक-सुतावरं ॥

(ख) जन-भाषा का भी एक उदाहरण देखिए—

द्वार हौं भोर ही को आज ।
रटत रिरिहा आरि और न कौर ही तें काज ॥
× × ×
जनम को भूखो भिखारी हौं गरीब-निवाज ।
पेट भरि तुलसिहि जेंवाइय भगति-सुधा-सुनाज ॥

निष्कर्ष यह कि विनयपत्रिका में भी तुलसी की समन्वयात्मक प्रतिभा का विभिन्न रूपों में परिचय मिलता है । उन्होंने काव्य और जीवन के सभी प्रमुख क्षेत्रों में, जिनसे विनयपत्रिका का यत्किंचित् भी सम्बन्ध है, समन्वय स्थापित करने की सफल चेष्टा की है । यही चेष्टा उनकी काव्य-कला की वह अद्भुत विशेषता है, जिसके कारण वे विद्वानों एवं सामान्य जनों में समान रूप से आदर के पात्र बने हुए हैं ।

प्रश्न ३१—हिन्दी-साहित्य में 'विनयपत्रिका' के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास जी का स्थान निर्धारित कीजिए ।

उत्तर—हिन्दी-साहित्य का प्रारम्भ काव्य से हुआ । आदिकाल में जिन कवियों ने अपनी कृतियों में उसकी श्रीवृद्धि की, उनमें महाकवि चन्दवरदायी

और जन-प्रिय कवि जगनिक के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। विद्यापति को भी आदिकाल का ही कवि माना जाता है। इन सभी कवियों ने काव्य को सीमित क्षेत्रों में स्थान दिया। न तो वे जीवन के विविध रूपों को अभिव्यक्त कर सके और न काव्य और जीवन का सम्बन्ध ही जोड़ सके। उनके काव्यों में ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करने अथवा मनोरंजन करने की प्रवृत्तियों का आधिक्य रहा। भक्तिकाल आदिकाल के पश्चात् का युग है। इस युग में सूर, तुलसी, जायसी एवं कबीर—चार कवियों का, और उनके साथ मीरा, परमानन्ददास नन्ददास, केशवदास, रहीम आदि अन्य श्रेष्ठ कवियों का प्रादुर्भाव हुआ। इन कवियों के काव्य में विभिन्न रूपों में प्रथम बार जीवन की विराट् रूप में अभिव्यक्ति हुई; किन्तु रीतिकाल में बिहारी, देव, भूषण, पद्माकर, मतिराम आदि के हाथों में पड़कर हिन्दी-कविता की धारा पुन. संकीर्ण क्षेत्र में प्रवाहित होने लगी।

आधुनिक काल में आकर हिन्दी-काव्य में राष्ट्रवाद, क्रान्तिवाद, छायावाद, रहस्यवाद, हालावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि अनेक वादों का उदय हुआ और उनके कारण कविता की धारा को विस्तार तो मिला, किन्तु जीवन की गहराई छूट गई। पंत, प्रसाद आदि गिने-चुने कवि ही उस गहराई को पहचान सके। प्रयोगवाद ने हिन्दी-काव्य को एक ऐसी दिशा में मोड़ दिया है, जिसमें उसके विकास की सन्ध्या का आभास मिल रहा है।

हिन्दी-काव्य के विकास की इस परिधि में महाकवि तुलसी का अपना विशिष्ट स्थान है। उन्होंने श्रीरामचरितमानस, विनयपत्रिका, गीतावली, कवितावली, कृष्णगीतावली, बरवै रामायण आदि १२ ग्रन्थ लिखे, जिनमें श्रीरामचरितमानस एवं विनयपत्रिका का प्रमुख स्थान है। इन सभी कृतियों में तुलसी की जिस काव्य-प्रतिभा की अभिव्यक्ति हुई है, वह उन्हें निस्सन्देह हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित करती है। हम देख चुके हैं कि आदिकाल की हिन्दी-कविता अपनी सीमा तथा उद्देश्य के दृष्टिकोण से अत्यन्त सामान्य स्तर की थी, वही दशा रीतिकालीन कविता की रही और आधुनिक काल के विविध वादों ने उसके उत्कर्ष के विभाजन की रेखाएँ अंकित कर दीं। भक्तिकालीन काव्य में हमें पूर्ववर्ती साहित्य की अविकसित प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति मिलती है और जीवन का वह विराट रूप भी मिलता है जो अन्य कालों की कविता में नहीं मिलता; साथ ही भक्तिकाल की जितनी प्रमुख विशेषताएँ हैं, उन

सबकी भी पूर्णता हमें तुलसी में मिलती है। उन्होंने 'श्रीरामचरितमानस' लिख कर जिन प्रवृत्तियों को स्वीकार करने की चेष्टा की, वे सब उसमें स्थान न पा सकीं। अतः उनके कवि का मधुर रूप विनयपत्रिका मे पूर्ण हुआ। इस दृष्टि से विनयपत्रिका के रचयिता महाकवि तुलसीदास जी का हिन्दी साहित्य मे अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

तुलसी ने 'श्रीरामचरितमानस' मे जीवन और उसकी संस्कृति की प्रबन्ध-शैली मे विस्तार से अभिव्यक्ति की है। 'विनयपत्रिका' में उनका मस्तिष्क और हृदय साकार हुआ है। हम उसमें उनकी आत्मा की संस्कृति को विराट् रूप में प्रतिष्ठा पाते हैं। आदिकाल से आधुनिक काल तक आत्मा की संस्कृति की अभिव्यक्ति का ऐसा विशाल प्रयत्न हम विनयपत्रिका के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं मिलता। यही कारण है कि विनयपत्रिका के रचयिता तुलसी की समता का कवि अब तक हिन्दी-साहित्य मे दिखाई नहीं दिया।

आदिकालीन साहित्य मे यदि शृंगार और संघर्ष की प्रधानता थी, तो रीतिकालीन साहित्य में भी उन्हीं दोनों तत्वों की प्रधानता रही। आधुनिक-काल में भी उलट-पलट कर ये ही दो तत्व विभिन्न वादों के रूप में अभिव्यक्त हुए और हो रहे हैं। परन्तु जो जीवन-तत्व तुलसी अपनी विनयपत्रिका द्वारा दे गए, वे अन्य किसी काल की किसी एक ही कृति मे पूर्ण रूप मे अभिव्यक्त नहीं हो सके और जो कुछ पूर्ववर्ती या परवर्ती कालो के कवियों ने दिया, उसकी तुलसी की विनयपत्रिका मे उपेक्षा नहीं मिलती। विशेषता यह है कि तुलसी ने सभी तत्वो मे साम्य उपस्थित कर काव्य को जीवन का एक पूर्णरूप प्रदान किया है।

हम 'विनयपत्रिका' मे कलियुग के विरुद्ध तुलसी का संघर्ष भी देखते हैं जो पूर्ववर्ती या परवर्ती कालो के कवियों के संघर्ष से कहीं अधिक श्रेष्ठ एवं व्यापक है, क्योंकि वह वैयक्तिक-मात्र नहीं है, अपितु वह समष्टिगत भी है। जो शृंगार आदिकाल से आधुनिक काल तक भक्तिकाल मे सूर आदि के काव्य से होता हुआ आया, उसकी भी आत्मा और परमात्मा के प्रणय के रूप मे विनयपत्रिका मे परोक्ष अभिव्यक्ति मिलती है। अन्य भक्त कवियों ने यदि भक्ति की नवीनता हिन्दी-काव्य को दी तो तुलसी ने उसमे पूर्ण आध्यात्मिकता का मिश्रण कर उसे चरम सीमा को पहुँचा दिया। ईश्वर के अस्तित्व में अगाध विश्वास करके तुलसी ने भारत की आत्मा को पहचाना और उसका आदर

किया। जिस उदार भूमिका में तुलसी ने मानवता की प्रतिष्ठा विनयपत्रिका में की, उस रूप मे अन्य कोई कवि आज तक नहीं कर सका।

काव्य-कला की दृष्टि से भी तुलसी की विनयपत्रिका का हिन्दी-साहित्य में एक उच्च स्थान है। उसमे हमे भाषा, शैली और अलंकार-योजना का एक पुष्ट रूप मिलता है। काव्य और संगीत का समन्वय—उसकी एक बहुत बडी विशेषता है। संस्कृत और ब्रज के मिश्रण और साहित्यिक स्तर पर दोनो के समन्वित रूप के प्रयोग का प्रयत्न सर्वप्रथम तुलसी ने ही किया। उनकी विनयपत्रिका इसका प्रमाण है। काव्यशास्त्र और सङ्गीतशास्त्र का तो वैसा परिचय बहुत कवियो ने दिया है, परन्तु जीवन और काव्य के सभी क्षेत्रो मे अद्भुत पाण्डित्य का जो रूप तुलसी की रचनाओ मे, और विशेषकर 'विनय-पत्रिका' मे मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। भक्ति का ऐसा सरल काव्य हिन्दी-साहित्य मे दूसरा नहीं। यदि तुलसी रवीन्द्र-युग के कवि होते तो निश्चय ही वह नोवल पुरस्कार, जो रवीन्द्र को 'गीतांजलि' पर मिला, तुलसी को 'विनयपत्रिका' पर मिलता। हिन्दी-साहित्य मे ऐसे महाप्राण कवि के विषय मे यह कथन सत्य ही है कि 'सूर ससी तुलसी रवि' तथा निम्न पंक्तियाँ किसी ने बड़ी सूझ-बूझ के साथ लिखी हैं कि—

> जंगम तुलसी-तरु लसै, आनन्द कानन-खेत।
> जाकी कविता-मंजरी, राम-भँवर रस लेत॥

प्रश्न ३२—भक्ति की परम्परा पर विचार करते हुए उसमें 'विनयपत्रिका' का स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर—भक्ति का सम्बन्ध ईश्वर-प्रेम से है—'सा त्वस्मिन् परमप्रेमा रूपा' (नारद भक्ति-सूत्र—२)। शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र मे भी ईश्वर मे अतिशय अनुरक्ति को ही भक्ति माना गया है—'सा परानुरक्तिरीश्वरे।' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने धर्म की रसात्मक अनुभूति को भक्ति माना है, जिसका भी सीधा सम्बन्ध ईश्वर-प्रेम से ही है। अतः भक्ति की परम्परा का आरम्भ तभी से मानना चाहिए, जब से मनुष्य ने ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया। इस स्वीकृति के पीछे प्रेम-तत्त्व निहित है। अतः भक्ति के लिए प्रेम का विषय ईश्वर एवं प्रेमी हृदय—दोनो की आवश्यकता है, जो द्वैत का प्रतीक है। जब से मनुष्य ने यह द्वैत मानकर स्वीकार किया कि संसार का नियंता कोई ईश्वर

है और मैं उससे प्रेम करता हूँ, तभी से भक्ति-परम्परा का विकास समझना चाहिए।

ईश्वर की स्वीकृति द्वैत के अतिरिक्त द्वैत और द्वैताद्वैत रूपों मे भी हुई है और इन रूपों मे भी मनुष्य ने ईश्वर-प्रेम की अभिव्यक्ति की है। अतः निराकर ईश्वर के प्रति प्रदर्शित प्रेम को भी भक्ति की सीमा मे ही माना गया है, भले ही वह भक्ति अव्यावहारिक हो। भारतीय साहित्य मे भक्ति के इन दोनो रूपो की एक दीर्घ परम्परा मिलती है, यद्यपि अधिक विकास द्वैतमूलक साकारोपासना का ही हुआ है।

वेदों मे ईश्वर को प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों के माध्यम से पूजा गया है। मन्त्रो के ऋषि अगाध श्रद्धा और विश्वास हृदय मे भर कर देवताओ को आमन्त्रित करते हैं। इस आमन्त्रण मे सर्वत्र प्रेम का एक अन्तर्व्यापी स्पर्श मिलता है। उपनिषदो मे भी भक्ति की एक गहरी अन्तरधारा मिलती है। कठोपनिषद् मे नचिकेता के लिए भक्ति के माध्यम से ही परमधाम का द्वार खुलता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् मे तो स्पष्टत. 'भक्ति' शब्द का प्रयोग करते हुए यहाँ तक कहा गया है—

यस्त देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरो।
तस्येते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

इससे स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य से ही भक्ति की परम्परा आरम्भ हो गई थी। आरम्भ मे उसके पीछे कोई कामना रहती थी और उपनिषद्-काल तक उसने निष्काम भक्ति का रूप ले लिया था। ब्राह्मण और आरण्यक भी भक्ति के इन दोनो रूपो से प्रभावित मिलते हैं।

दर्शन-साहित्य मे वेदो से आरण्यको एवं ब्राह्मण ग्रन्थों तक प्रतिपादित भक्ति के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष स्वरूपो को व्यवस्थित आधार मिला है। आराध्य को पहचानने और मोक्ष पाने की आकांक्षा दर्शन का मूल तत्व रही है। बृहदारण्यकोपनिषद् मे आत्मा और परमात्मा के प्रेम एवं आलिंगन का चित्रण मिलता है। मुण्डकोपनिषद् मे स्पष्टतः प्रत्यय परमात्मा को प्राप्त करने के लिए श्रद्धा आवश्यक मानी गई है। श्वेताश्वतरोपनिषद् के छठे अध्याय में कहा गया है कि ईश्वर का स्वरूप उसी मनुष्य के हृदय में भासित हो सकता है, जो ब्रह्म में पूर्ण भक्ति रखता है।

वैदिक साहित्य के अतिरिक्त तन्त्रशास्त्र मे भी भक्ति का स्वतन्त्र विकास मिलता है। मोअन-जो-दड़ो और हड़प्पा की सभ्यता मे शिव और शक्ति के प्रतीकों की पूजा का प्रमाण उपलब्ध है। जब आर्य-सभ्यता का विकास हुआ, तब शिव-पूजा नए रूप मे प्रतिष्ठित हुई। आज भी उत्तर से सुदूर दक्षिण तक पुराने शिव-मन्दिर मिलते हैं, जो शिव की भक्ति का स्पष्ट प्रमाण हैं।

भागवत धर्म मे भक्ति को सबसे अधिक स्थान मिला है। वैष्णव पुराणों में विभिन्न कथाओं के माध्यम से भक्ति के धर्म को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया, जो आज भी भक्ति की महिमा को जीवित रखे हुए है। ब्रह्मवैवर्त पुराण तथा श्रीमद्भागवत के द्वारा भक्ति का रहस्य सामान्य जनता तक पहुँचा है। राम और कृष्ण विष्णु के अवतार बनकर जन-जीवन मे ईश्वर-रूप मे प्रतिष्ठित हुए हैं। कृष्ण की लीलाएँ भक्ति को सरस बनाकर सामान्य जन को आकर्षित करने मे समर्थ हुई। तुच्छ से तुच्छ जन भी भगवान् की विविध लोक-लीलाओं का साक्षात्कार कर मोक्ष का मार्ग सरल बना लेते हैं।

श्रीमद्भगवत गीता को निष्काम भक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। इस ग्रन्थ मे ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय किया गया है, किन्तु उनमे भक्ति ही प्रधान रही है। भगवान् कृष्ण जीव को सभी धर्मों का परित्याग कर अपनी शरण मे बुलाते हैं। सभी कर्मों, संकल्पों और भावनाओं का ईश्वर मे समर्पण भक्ति की उत्कृष्टता का ही एक सोपान है। यही कारण है कि आज भी भक्तों के लिए गीता सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बना हुआ है।

शंकराचार्य ने जब संसार को मिथ्या बताकर ईश्वर के अद्वैत स्वरूप की स्थापना की थी, तब लोगों को लगा था कि वे भक्ति के विरोधी हैं, किन्तु वास्तविकता यह थी कि वे स्वयं भी शक्ति के उपासक थे। अन्त में उनका निराकार अद्वैत ब्रह्म भी भारत की धर्म-प्रवण जनता के लिए भक्ति का विषय बन गया। एक समय ऐसा आया, जब साकार और निराकार के उपासकों में परस्पर संघर्ष उत्पन्न हो गया। दक्षिण मे चार आचार्य उत्तर भारत की ओर चले, जिन्होंने शंकराचार्य के अद्वैतवाद को भक्ति के क्षेत्र में नए ढंग से व्याख्याएँ कीं। वे आचार्य थे—

निम्बार्काचार्य, विष्णु स्वामी, मध्वाचार्य और वल्लभाचार्य। निम्बार्काचार्य ने राधा एवं कृष्ण की पूजा का प्रचार किया। मध्वाचार्य ने कर्म और ज्ञान

से भी भक्ति को श्रेष्ठ माना। वल्लभाचार्य ने उत्तर भारत में भक्ति की जड़ें सबसे गहरी करने का ऐतिहासिक कार्य किया। कृष्ण-भक्ति को उनके सिद्धान्तों से अत्यधिक बल मिला। उनका भक्ति मार्ग पुष्टि-मार्ग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। विष्णु स्वामी के सिद्धान्त प्रायः मध्वाचार्य के सिद्धान्तों से मेल खाते हैं। इन सब आचार्यों के अतिरिक्त रामानन्द का भी मध्यकालीन भक्ति-प्रचारकों में महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने राम की उपासना पर विशेष बल दिया है। राम-भक्ति की प्रेरणा देने वालों में वे प्रमुख स्थान रखते हैं।

काव्यात्मकता की दृष्टि से नवीं शती के उपरान्त देव की भक्ति-परक रचनाएँ विशेष महत्व रखती हैं। उनके पश्चात् जगद्धर भट्ट ने स्तुति कुसुमाञ्जलि लिखकर संस्कृत के कवियों को भक्ति-रचना की जो प्रेरणा दी, वह हिन्दी के कवियों को भी प्रभावित करती दिखती है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि तुलसीदास को इसी ग्रन्थ से विनयपत्रिका लिखने की प्रेरणा मिली थी। दोनों ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन से यह सिद्ध भी है कि विनयपत्रिका की रचना पर स्तुति कुसुमाञ्जलि का पर्याप्त प्रभाव है।

विनयपत्रिका में ईश्वर को राम के रूप में आराधना का विषय बनाया गया है। वह सब देवताओं से ऊपर हैं। तुलसी उनको अपना एक मात्र आराध्य मानते हैं। वे अन्य देवताओं को पूजते अवश्य हैं, किन्तु वे देवता उनका लक्ष्य नहीं हैं, लक्ष्य तो राम ही हैं। जिस प्रकार स्तुति-कुसुमाञ्जलि को जगद्धर भट्ट ने पार्वती और गणेश की वन्दना करते हुए नाथ के चरणों में अर्पित किया है, उसी प्रकार तुलसीदास ने भी सीता आदि से प्रार्थना करके राम के चरणों में अपनी विनयपत्रिका पहुँचाई है। भक्ति की यह पद्धति जिसमें ईश्वर के प्रति सर्वस्व समर्पण है, एकमात्र उसी से सब कुछ पाने की कामना और आशा है,—विनयपत्रिका को भक्ति की परम्परा में एक नितान्त नए स्थान पर स्थापित करती है। इस काव्य में राम तुलसी के उपास्य बन कर अद्वैत, द्वैत और द्वैताद्वैत के तीनों भ्रमों से मुक्ति देते हैं। उनकी कृपा हो जाने पर संसार दुख-मय नहीं रह जाता। तुलसी ने विनयपत्रिका में विनय, अनुशासन और प्रेम के माध्यम से भक्ति के क्षेत्र में जो समर्पण दिखाया है, वह समस्त भक्ति-परम्परा में नितान्त तथा महत्वपूर्ण है।

विनयपत्रिका से पूर्व संस्कृत और हिन्दी में जो भक्ति-काव्य लिखा गया, उससे भक्ति की परम्परा को उतना बल और विस्तार नहीं मिला था, जितना

विनयपत्रिका की भक्ति-भावना से मिला है। उसमे दर्शन की प्रौढ़ता भावना की उच्चता, अभिव्यंजना की सशक्तता एव भाषा की मार्मिकता—सबका सुन्दर समन्वय हुआ है।

तुलसी के पूर्ववर्ती एव समकालीन हिन्दी कवियों के भक्ति-काव्य मे विनयपत्रिका जैसा न तो दार्शनिक गाम्भीर्य है, न भावो का स्वरूप ही इतना उदात्त मिलता है। कबीर खण्डन-मण्डन मे उलझ गए हैं और सूर ने भी बहुत दूर तक उसी रास्ते को पकड लिया है। विनयपत्रिका दार्शनिक झगडों से बच कर शुद्ध भक्ति के सोपानों पर चलकर ऊर्ध्व शिखर पर आरोहण करती है। इस काव्य के पश्चात् भी भक्ति का इतना सुन्दर काव्य नहीं रचा गया। अतः भक्ति की परम्परा मे विनयपत्रिका अद्वितीय हिन्दी काव्य है।

०